।। गृहसेवा और व्रजलीला ।।

व्याख्याता : गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

''गृहसेवा और व्रजलीला'' यह ग्रन्थ गोस्वामी श्रीश्याममनोहरजी (किशनगढ-पार्ला) ने वर्ष २००१ में किशनगढमें किये प्रवचन पर आधारित है

उपक्रम:

'प्रमेयरतत्नार्णव' ग्रन्थके अन्तर्गत कई विवेक श्रीलालूभट्टजीनें लिखे हैं. जैसे, प्रपञ्चविवेक, जीवविवेक, मूलस्वरूपविवेक, पुष्टिभक्तिअधिकारविवेक, सर्वात्मभावविवेक, फलविवेक, ख्यातिविवेक इत्यादि. वामेंसु 'फलविवेक'नामको जो प्रकरण है वामें एक विषय श्रीलालूभट्टजीने बहुत अच्छो छेड्यो है. वहां श्रीलालूभट्टजीने ये दिखायो है के अपन् आज जो भगवत्सेवा कर रहे हैं वो ओर प्रभु जा बखत व्रजमें प्रगट भये हते वा बखतकी कृष्णलीला, इन दोनोंन्को आपसी सम्बन्ध ऐसो है के जैसो सम्बन्ध हाथ और हाथके मोजाको होवे है. दूसरे शब्दन्में कहें तो पाग माथापे जैसी फिट् बैठे है ऐसे लीला और सेवा एक-दूसरेसुं फिट् बैठती चीजें हैं. या ही प्रकारसुं जो पुष्टिमार्गीयें आज सेवा नहीं कर सके हैं उनकु कृष्णावतारकी लीलाके कौनसे पहलूको चिन्तन करनो चहिये वा बातकी भी विवेचना उनने करी है. माने (अर्थात् जो भगवत्सेवा नहीं कर सके हें) वे लोग लीलाको श्रवण कर सके हैं, कीर्तन कर सके हैं, मनन कर सके हैं, गान कर सके हैं इत्यादि. या प्रकारसुं दोनोन्कु ही लीलको पक्ष समझायो है. आप याकु ऐसे समझो के सेवा अपनी तलवार है, तो कौनसी लीलाकी म्यानमें रखी वो भई है ये बात अपन्कु समझनी पड़ेगी. ऐसे ही आप सोचो के कृष्णलीलाको श्रवण-कीर्तन-स्मरण अपनी तलवार है, तो वो कौनसी सेवाकी म्यानमें रखी भई है इन सब बातन्कुं बिचारनो है.

मैं तलवारकी बात यहां क्यों ला रह्यो हुं वाको कारण समझो. तलवार जैसे कोई चीजकु काटे है ऐसे भगवल्लीलाको श्रवण-कीर्तन-स्मरण और प्रभुकी तनुवित्तजा और भावात्मिका सेवा भी कई चीजन्कु काटे है. वो कटती चीजें क्या हैं वा बातको विचार अपन् आगे चलके करेंगे.

सेवा-लीलाको सन्तुलन:

आप कहोगे के काटनो क्यों? जोडनो क्यों नहीं? तो समझो के हर चीजके जुडवेमें ही फायदा नहीं होवे है, कई चीजन्के कटवेमें भी फायदा होवे है. जैसे शरीरमें फोडा (गुमडुं) हो गयो होवे तो

वाके कट जावेमें ही फायदा है. नाखून भी जब बढ जावें तब उनके कट जावेमें ही फायदा है. अर्थात् कछुकके जुडवेमें फायदा होवे है कछुकके कटवेमें फायदा होवे है. आप पैड उगाते होगे तो आपकु ध्यान होयगो के पैडकी जा बखत कलम नहीं करें तो पैड खुद मुरझायोसो हो जाय है. और यदि पैडकी थोडी-थोडी कलम करते रहैं तो वामें नई-नई कुंपणे फूटवे लगे हैं, नई-नई डालीएं आवें हैं, पेडकु नयो उत्साह आवे है, फल-फूल नहीं उगते होंय तो उगवे लग जाय हैं. तो हर चीजको सन्तुलन होनो चहिये. ऐसो सन्तुलन लीलाको सेवासु और सेवाको लीलाभावसु कैसे है वा बातकु श्रीलालूभट्टजीने बहोत खूबसूरतीसु समझायो है.

सेवा-लीलाकी परस्पर निर्भरता-पूरकता:

अपन् क्या कर सके हैं क्या नहीं कर सके हैं वो अपनी सीमा है. पर अपन् जो भी कर सकता होंय वो अपन् करें. अपन लीलाको श्रवण-कीर्तन-स्मरण कर सकते होंय तो या बातकु समझें के लीला वामें कैसे सहायक हो सकेगी. अपन् सेवा कर सकते होंय तो भी या बातकु समझें के वामें भगवल्लीलाको श्रवण, कीर्तन और भावन अपनी सेवाकु ऊंची गरिमा कैसे प्रदान कर सके है. ऐसे परस्पर पूरकता-निर्भरता सोचनी चहिये.

जैसे ताशको महल बच्चाएं बनावे हैं वामें दो ताश कैसे एक-दूसरेपे टिक जावे हैं, जैसे गुम्बजकी ढलती छतें एक-दूसरेके सहारे कैसे टिक जावे हैं, ऐसे भगवल्लीला और अपनी सेवारूपी कृती-कर्म कैसे प्रकारसु एक-दूसरेपर निर्भर हैं ये अपनकु सोचनो चहिये. माने (अर्थात्), भगवल्लीला तो भगवानके कर्मपे निर्भर है; पर सेवारूपी-भजनरूपी जीवको कर्म भगवल्लीलापे कैसे निर्भर है ये सोचनो चहिये. परस्पर निर्भरताकु आप फुंदरीके दृष्टान्तसु समझ सकोगे. जन्माष्टमीके दिन एक-दूसरेके हाथन्कु पकडके जब अपन गोल-गोल फिरे हैं तब, आप सोचो के, कौन कौनपे टिक्यो होवे है? दोनों ही एक-दूसरेपे टिके होवे हैं. यदि दोमेंसु कोई भी हाथ छोड़ दे तो दोनों ही गिरेंगे. क्योंके दोनों एक-दूसरेपे निर्भर हैं. ऐसे ही सेवा लीलापर निर्भर है और लीला सेवापर निर्भर है.

सेवा-कथाकी परस्परोपकारकता:

भगवल्लीलाको अपन श्रवण-कीर्तन-स्मरण कर पा रहे हैंह्नभावन कर पा रहे हैं और सङ्ग-सङ्ग भगवत्सेवा भी कर पा रहे हैं तो भगवान्की अपनेपे बडी कृपा समझनी चहिये. पर कोई व्यक्ति भगवल्लीलाको श्रवण-कीर्तन-स्मरण तो करे है पर प्रभुकी सेवा नहीं करे है तो कुछ गड़बड़ है. जैसे कोई अपने बच्चा, पति, पतनी सबकु याद तो करे है पर उनके सङ्ग नहीं रहे है. साथ रहवेमें बोरियत

होवे है. मतलब, कुछ गड़बड़ है. अरे भाई जब याद कर रहे हो, जब पत्र लिख रहे हो, जब फोटो भी टांग रहे हो तब फिर साथ रहवेमें तकलीफ क्या है? एक स्थिति तो ये. दूसरी स्थिति ऐसी है के जामें कोई व्यक्ति प्रभुसेवा तो करे है पर प्रभुकी लीलाको श्रवण-कीर्तन-स्मरण नहीं करे है. जैसे कोई दो व्यक्ति साथ तो रह रहे हैं पर एक सवेरे जगके अपने कामपे चल्यो जाय है, दूसरो अपने काममें लग्यो रह है, भोजनके समयपे भोजन कर लेवे हैंह्नऐसे यन्त्रवत् सब चलतो रहे है. न हंसी-मज़ाक, न बोल-चाल, न घूमनो-फिरनो ... ''न उद्धवको लेन न माधवको देन, जैसे बालम घर भले तैसे भले विदेश'' ऐसी भी (यन्त्रवत्) सेवा करवेवाले हो सके हैं. न उनकु कछु हमसुं लेन-देन, न हमकु कछु उनसुं लेन-देन. बस एक बैलगाड़ामें दो बैल जुते भये साथ-साथ चल रहे हैं. जब तक चालक चला रह्यो है तब तक चलते जानो है. ठीक बात है, बैलगाड़ीके बैलकी तरह गृहस्थीमें चलनो एक कथा है और एक-दूसरेके साथको मज़ा लेते भये चलनो दूसरी कथा है. जैसे दो दोस्त सङ्ग घूमवे जावें, एक-दूसरेके हाथकु पकड़के, एक-दूसरेके कंधापे हाथ धरके बतियाते भये जावें तो यात्राको आनन्द कछु ओर हो जाय है. ऐसे ही या भक्तिमार्गमें सेवा और भगवल्लीला को है.

लीला-सेवाको समन्वय:

सेवा अपनो कर्म है. ध्यानसुं समझो, सेवा अपनकु करनी है और लीला भगवानकु करनी है. भगवान् जो कर रहे हैं वाकु 'लीला' कह्यो जा रह्यो है. अपन जो कर रहे हैं वाकु 'सेवा' कह्यो जा रह्यो है. इन (लीला-सेवा) दोनोन्में दोस्ताना सम्बन्ध है. जैसे भगवान् अपने कंधापे लीलाको हाथ रख दें और अपन भगवान्के कंधापे सेवाको हाथ धर दें ऐसे जब अपन या भक्तिके मार्गपे आगे चलेंगे तब भक्तिमार्गकी जो मज़ा आयगी वो कछु और ही होयगी. वो मज़ा भगवान्कु भी आयगी और भक्तकु भी आयगी. वरना तो श्रीमहाप्रभुजीने बैलगाड़ा चला दियो है भक्तिमार्गको, भगवान् भी बिचारे वामें जुते भये हैं जायें कहां भगवान् अपन भी कहां जायें कंठी पहनली है डंडा पड़ रहे हैं (कर्तव्यबोधके) यालिये दौड़ रहे हैं. ध्यान रहे दौड़वेमें पुरुषार्थ अवश्य है पर भगवान्के साथ चलवेको आनन्द नहीं है. यदी या भक्तिमार्गपे भगवान्के साथ चलवेको आनन्द लेनो है तो भगवान्के कंधापे अपनकु सेवावालो हाथ रखनो पड़ेगो. हाथ कंधापे रखनो, कमरमें डालनो या हाथमें हाथ डालनोह्नप्रश्न ये नहीं है, बात ध्यानसुं समझियो, प्रश्न इतनोसो है के दोनोन्को एक-दूसरेसु कछु जोड़ (सम्बन्ध) होनो चहिये. भक्तिमार्गपे भगवान् और जीव दोनों चल रहे हैं पर जा प्रकारकी तन्मयता दो दोस्तके चलवेमें होवे है, जैसो चलवेको आनन्द दो दोस्त उठावे हैं वेसी तन्मयता और वेसो आनन्द यदि अपनेकु भक्तिमार्गपे चलवेको लेनो होय और भगवान्कु भी देनो होय तो लीला और सेवा को समन्वय करनो बहुत जरूरी है. भगवल्लीलाको भगवत्सेवामें समन्वय अपने यहां कितनी सरलतासुं सहजतासुं बड़ेन्ने गूंथ्यो है वा बातकु

यदि समझें तो सेवाको क्या स्वरूप है और लीलाको क्या प्रयोजन है ये समझमें आयगो. या बातकु श्रीलालूभट्टजीने बहुत ही खूबसूरत ढंगसु समझायी है.

चतुर्विध भगवल्लीला:

श्रीलालूभट्टजी 'फलविवेक' ग्रन्थके प्रारम्भमें समझा रहै हैं के प्रभुकी लीला चार प्रकारकी हैह्व

१.तामसभाववाली लीला

२.राजसभाववाली लीला

३.सात्त्विकभाववाली लीला

४.निर्गुणभाववाली लीला

ऐसी चार प्रकारकी लीलाएं प्रभु क्यों करे हैं? तो वामें ये समझो के जीवमें भी ऐसे चारों प्रकारके भाव होवे हैं. कछुक जीवन्में प्रभुके प्रति तामसभाव होवे हैं, कछुकमें राजसभाव होवे हैं, कछुकमें सात्त्विकभाव होवे हैं और कछुकमें प्रभुके प्रति निर्गुणभाव होवेहैं.

लीलानुरूप भावना:

अपन सब जाने हैं:''जाकी रही भावना जैसी प्रभुमूरत तिन देखी तैसी''. पर यहां ''प्रभुमूरत तिन देखी तैसी'' इतनी छोटीसी बात नहीं कही जा रही है. यहां वासुं दो कदम आगे बढके बात कही जा रही है. वो ये के ''जाकी रही भावना जैसी प्रभुमूरत तिन करदी तैसी''. प्रभुकी मूर्ति वाने वा ढंगकी बना दी है जैसी कि वाकी भावना है. करके (यासूं) प्रभुकी मूर्ति भी चार प्रकारकी है. प्रभुकी मूर्ति जब चार प्रकारकी है तो प्रभुकी लीला भी चार प्रकारकी है, प्रभुकी बातें भी चार प्रकारकी है और प्रभुकी लीलाके प्रभाव भी चार प्रकारके हैं.

प्रभुने भक्तके भावके अनुरूप अपनो स्वरूप प्रकट कीयो है. और जैसो स्वरूप प्रकट कीयो है वा स्वरूपके अनुरूप प्रभुने लीलाएं करी हैं. ये लीलाएं भक्तकु भगवानके प्रति क्यों आकृष्ट करे हैं? भगवान् भी भक्तके प्रति क्यों आकृष्ट होवे हैं? याको कारण ये ही है के दोनों एक-दूसरेके अनुरूप हैं. जलमें तेल इतनो जल्दी नहीं मिल पावे है जितनो जल्दी जलमें जल मिले है. यासुं जब एक-दूसरेसुं मिलनो है तो एक दूसरेके अनुरूप होनो पड़ेगो. जब अनुरूप होंयगे तो मेल-मिलाप सच्चो होयगो, अन्यथा नहीं होयगो. ये कथा जल और तेल की ही नहीं है, ये कथा मनकी भी है, ये कथा मनकी ही नहीं है ये कथा परिवारकी भी है. ये ही कथा गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा, चिकित्सक-रुग्ण, भाई-भाई,

पति-पत्नी, माता-पिता और सन्तति के बीचकी भी है. जब एक-दूसरेके अनुरूप होवें जब एक-दूसरेके प्रतिरूप होवें तब जैसो सुख, जैसो सौमनस्य, जैसो प्रभाव परिलक्षित होवे है वैसो प्रभाव अनुरूपताके बिना परिलक्षित होनो कठिन है. करके, लीला और भगवत्सेवा; भगवत्सेवा और भगवल्लीला कैसे एक-दूसरेके अनुरूप हो सके हैं वा बातकु श्रीलालूभट्टजी समझा रहे हैं.

परस्पर अनुरूपताको तात्पर्य:

भगवल्लीला और भगवत्सेवा को एक-दूसरेके अनुरूप होयवेको सीधो-सीधो अर्थ है: भक्त और भगवान् की परस्पर अनुरूपता. भगवान् अपने अनुरूप होनो चाहें तो अपनकु भगवान्के अनुरूप होनो पड़ेगो. अपन भगवान्के अनुरूप होनो चाहें तो भगवान्कु अपने अनुरूप होनो पड़ेगो. यदि दोनों परस्पर अनुरूप नहीं हो पा रहे हैं तो कुछ न कुछ अड़ंगा (अवरोध) लग्यो ही रहेगो. जैसे एक सामान्य बात आपकु बताउं के जब अपन बालभावसुं प्रभुकी सेवा करते होवें तब यदि अपनकु प्रभुकी बाललीला स्फुरित नहीं हो रही है तो समझो के अपनी प्रभुसेवामें कुछ न कुछ लफड़ा है. अपन किशोरभावसुं सेवा कर रहे हैं पर किशोरलीला स्फुरित नहीं हो रही है तो सेवामें कछु न कछु अडंगा आयगो ही. अपन श्रीमहाप्रभुजीके मार्गमें सेवा कर रहे हैं परन्तु श्रीमहाप्रभुजीको सिद्धान्त नहीं जान रहे हैं तो सेवामें कछु न कछु अड़ंगा आयगो ही. तो परस्पर अनुरूपताको होनो बहुत जरूरी है.

अनुरूपता नहीं होयवे पर अनिष्ट:

परस्पर अनुरूपता नहीं होवे तो क्या होवे? अपन दालमें चावल मिलादें तो खीचड़ी बन जाये पर जब खीचड़ीमें कंकड़ मिल जाय तो अपन क्या करें? थू-थू करदे हैं. कोई कह सके है के कंकड़ भी तो चावलके जितनो छोटोसो होवे है तो समझो, कंकड़ चावलके जितनो ही छोटो हो सके है पर वो दाल-चावलके अनुरूप नहीं हो पावे है यासुं अपन वाकु थूक दे हैं. खीरमें कभी कंकड़ आ जाय तो अपनकु थूंक देनो पड़े है. क्यों? क्योंके वो दूधके अनुरूप नहीं हो पायो. चावल जब दूधमें चल्यो जाय है तब वो दूधके अनुरूप हो जाय है. दूध जब चावलसु मिल जाय तो चावलके अनुरूप हो जाय है. दूधको स्वाद अलग होवे है, चावलको स्वाद अलग होवे है और खीरको स्वाद इन दोनोंनूसुं अलग होवे है, ये बातकु ध्यानसु समझो. खीरको चावल कछु दूधको स्वाद लिये भयो होवे है और खीरको दूध कुछ चावलको स्वाद लियो भयो होवे है. या तरहसुं दोनों एक-दूसरेके अनुरूप होवे हैं करके खीरको कोई स्वाद है, दोनों एक-दूसरेके अनुरूप होवे हैं करके खिचड़ीको कोई स्वाद है. परन्तु कंकड़ न तो खीचड़ीके दाल-भातके अनुरूप हो पावे है और न खीरके अनुरूप हो पावे है करके वाकु अपन् थूक दें हैं. ऐसे ही एक-दूसरेके अनुरूप नहीं होयवेसुं अपने पुष्टिमार्गमें भी कितनी थू-थू हो रही है.

कोई मोकु थू-थू करते होयेंगे कोईकु में करतो होउंगो. ये सब गड़बड़ एक-दूसरेके अनुरूप नहीं होवेके कारण हो रही है. यदि अपन सब एक-दूसरेके अनुरूप हो जायें फिर तो स्वाद ही स्वाद है. तो ये अनुरूपताकी बात बहोत ध्यानसु समझवेकी है. याकु आप गम्भीरतासुं लोगे तो मेरो मतलब आपकु समझमें आयेगो.

श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं:

‘ ‘ आधुनिकानां त्रिविध-पुष्टिभक्तानां साधनसापेक्षत्वाद् आदित: आरभ्य सेवा-श्रवणादिप्रकारः तामसादिगुणनिवृत्तिप्रकारश्च, आध्यात्मिकरीत्या निरूप्यते’’.

(सात्त्विक-राजस-तामस ऐसे तीनों प्रकारके आधुनिक पुष्टिभक्तन्को उद्धार भगवान् साधनद्वारा करनो चाहे हैं. अत: ऐसे आधुनिक पुष्टिभक्तन्कों अपने अधिकार, साधन आदि विषयन्को सम्यक् बोध होवे वाके अर्थ सेवा, श्रवण, कीर्तन आदि पुष्टिभक्तिमार्गीय साधनन्को अरु तामस, राजस आदि गुण दूर होईके वे निर्गुण अवस्थाकों प्राप्त करें वाके उपायन्को आध्यात्मिक रीतिसों आरम्भसों निरूपण करत हैं).

भगवल्लीलाके अनुरूप बनो :

श्रीमहाप्रभुजीने सूरदासजीकु एक दिन कही हती: ‘ ‘शूर ह्वैके काहे घिघियात है’’ (शूर=वीर; सूर=विद्वान्) ये जो भाव श्रीमहाप्रभुजीने प्रकट कियो वाको क्या तात्पर्य? आपको तात्पर्य ये है के भगवान् यदि अपनपे पुष्टि करनो चाह रह्यो है और वा बखत यदि अपन् घिघियाते होंयगे तो बड़ी गड़बड़ हो जायगी. भगवान् कहेंगे के ये तो मेरे अनुरूप नहीं है. भगवान् अपनकु पूरी उमंगसुं मिलने आ रह्यो है, अपन फिर भी घिघिया रहे हैं के ‘ ‘हों पतितनको टीको, मो सम कौन कुटिल खल कामी’’. सूरदासजीकी भगवान्सुं अनुरूपता नहीं भयी हती. अनुरूप होयवेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने उनकुं टोके ‘ ‘शूर ह्वैके काहे घिघियात है कछु भगवल्लीला गा’’. लीलागान क्यों करवायो? यालिये के लीलागानकी प्रक्रियाद्वारा सूर भगवान्के वा स्वरूपके अनुरूप हो जायें जा स्वरूपकी सेवा करवेकी दीक्षा श्रीमहाप्रभुजी सूरदासजीकु देनो चाह रहे हैं. सूरदासजी जब भगवल्लीलाको गान करेंगे तब उनमें भगवान्के अनुरूप होवेको भाव जगेगो.

घिघियाओ मत भगवल्लीला गाओ:

आपकु लगेगो के ये श्रीमहाप्रभुजीके कोई चमत्कारकी बात होयगी. चमत्कारकी बात हती के नहीं हती वा कथाकु एक बखत बाजुपे रखो. सीधीसी बात ये समझो. अपने यहां छब्बीसवीं जनवरीके दिन परेड होवे है. वामें आपने देख्यो होयगो के परेड करवेवाले कोई गीत गाते भये परेड करते होवें हैं. ऐसो वे क्यों करे हैं? क्यों के गीत गावेकी प्रक्रियासु उनके दिलमें कोईक भाव हिलोर लेने लग जाय है. यासुं ही कोई डरपोकके सामने भी यदि वीरताके गीत गाये जायें तो वाके अन्दर भी वीरताके भाव जग जाते होवे हैं. पुराने जमानेमें भाट-चारण लडाईके बखत राजपूतन्के सामने वीरताके गीत गाते. वाके कारण क्या होतो? गीत सुनके उनमें कोई शक्ति नहीं बढ़ जाती हती. पर उमंग बढ़ जाती हती. और कोई बहादुर सैनिक लड़वे जा रह्यो होय वा बखत यदि कोई रोवेके गीत गावे लग जाय के ''अब तो तुम मर जाओगे, तुम्हारे परिवारको क्या होयेगो, तुम्हारी औरत विधवा हो जायगी, तुम्हारे बच्चाएं भूखे मर जायेंगे'' तो ऐसी सब बातें सुनके बिचारे बहादुरकी भी हिम्मत पस्त हो जायगी. याको नाम है 'घिघियानो'.

एक प्रयोग कर के देखियो. रसोई बनावे जाती कोई औरतकु ऐसी बातें सुनाओ के ''नमक ज्यादा पड़ जायगो, तीखो बन जायगो, रसोई जल जायगी ...''. दो-चार बार ऐसी-ऐसी बातें वाकु सुनाओ. आप देखीयो, वो कुशल होयगी तो भी वाकी रसोई खराब बनेवे लगेगी. वो नर्वस् हो जायगी. याके विपरीत, आप यदि वाकु धीरज-ढाड़स बंधाओगे, वाकी प्रशंसा करोगे तो बिगड़ी भी अच्छी बनवे लग जायगी. तो, जो बात भगवान् और भक्त के बीचमें होने जा रही है वाकु श्रीमहाप्रभुजी बनानो चाह रहे हैं, बिगाड़नो नहीं चाह रहे हैं. यासुं श्रीमहाप्रभुजीने सूरदासजीकु कही के ''शूर ह्वैके काहे घिघियात है कछु भगवल्लीला गा''. भगवल्लीला गा जासुं तु भगवान्के अनुरूप हो जाय. गाते-गाते वो जोश तेरेमें आ जाय, वो उमंग तेरेमें आ जाय. और आज अपन कैसे उपद्रवी हो गये हैं के वा लीलाकु गाते-गाते पाछो यों सोचें के ''वैसो अङ्गीकार अपनो कहां? वो तो द्वापरकी बात हती, अब तो कलियुग है, कलियुगमें तो सब पापी ही हैं, कलियुगमें तो सब पाखण्डी ही हैं, सब धर्मद्वेषी हैं ...''. धीरे-धीरे ऐसे सोचनो शुरू करोगे तो सचमुचमें तुम पाखण्डी ही हो जाओगे. क्योंके जब अपन सोच ही ऐसे रहे हैं के चारों ओर ऐसे ही हो रह्यो है तो अपन् खुद भी वा सोचके अनुरूप हो जायेंगे. तो श्रीमहाप्रभुजीको सिद्धान्त या तरहसुं घिघियावेको नहीं है. श्रीमहाप्रभुजीको सिद्धान्त भगवल्लीलाके गानको है. ''शूर ह्वैके काहे घिघियात है कछु भगवल्लीला गा''. घिघियाओ मत भगवल्लीला गान करो.

श्रीमहाप्रभुजीने भी ''कृष्णएव गतिर् मम'' कह्यो वाके पहले बहुत सारी विषम परिस्थितीन्को

चित्रण श्रीकृष्णाश्रय ग्रन्थमे कियो है:' 'सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खल धर्मिणि, पाषण्डप्रचुरे लोके ...''
पर विषयकु वहां नहीं छोड्यो है. छोड्यो है कहां? ये (मार्ग, तीर्थ, गुरु आदि) सब भले खत्म हो गये होवें पर ' 'मेरी गति तो कृष्ण है''. वो गति मेरी कभी भी खत्म नहीं हो सके है. कृष्णकु तो मैं पाके रहूंगो, पाके रहूंगो और पाके ही रहूंगो. कृष्ण मोकु मिलेगो, मिलेगो और मिलेगो ही. ऐसे एक बखत नहीं ग्यारह बखत श्रीमहाप्रभुजीने रिपीट् कर दियो. तो घिघियावेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने कृष्णाश्रय नहीं बनायो है पर कृष्णके लीलागानमें अपनो दृढतर अवलम्बन कृष्ण है, सब कुछ खतम हो जाय तो भी कृष्ण अपन्कु मिल सके है, सब कुछ खतम हो गयो है तो भी अपन् कृष्णकु पा सके हैं ऐसी दृढता जगावेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने कृष्णाश्रय कह्यो है. भले हर श्लोकमें तीन पाद विषमताके हैं पर, एक बात ध्यानसु समझो, वा हर विषमताके सामने एक 'कृष्ण' ऐसो बड़ो फेक्टर् है के ' 'सौ चोट सुनारकी, एक चोट लुहारकी''. तो ' 'कृष्णएव गतिर् मम'' की चोट ऐसी लुहार जैसी तगडी चोट है के वो सौ चोटन्कुं बराबर कर दे है. ऐसी ही लुहारकी चोट श्रीमहाप्रभुजीने पाछी शिक्षाश्लोकीमें बताई है.

यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ कथञ्चन।
तदा कालप्रवाहस्था देहचित्तादयोप्युत।।
सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मानिति मतिर् मम।
न लौकिकः प्रभु: कृष्णो मनुते नैव लौकिकम्।।
भावस् तत्राप्यस्मदीयः सर्वस्वश् चैहिकश्च स:।
परलोकश्च तेनाऽयं सर्वभावेन सर्वथा।
सेव्य: सएव गोपीशो विधास्यत्यखिलं हि न:।।

ह्न' 'सएव अखिलं विधास्यति'' वो ही सब कुछ करेगोह्नये कहके श्रीमहाप्रभुजीने क्या बात समझाई है? ये बात नहीं समझाई है के सारी दुनिया ही बहिर्मुख है, और हम भी बहिर्मुख होयेंगे. ' 'अब हम भी जाने वाले हैं, सामान तो गया''. ऐसे बहिर्मुख होवेकेलिये शिक्षाश्लोक नहीं समझाये हैं. कृष्णाभिमुख होवेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने शिक्षाश्लोक समझाये हैं के ' 'सेव्य: सएव गोपीशो विधास्यत्यखिलं हि न:''. वा कृष्णकु पकड़ो, वा कृष्णकु अपनी गति मानो, वा कृष्णकु अपनो कर्तव्य मानो, सब कछु सुधर सकेगो. हरिवंशराय बच्चनकी कविता मोकु बहुत प्रिय है वो में आपकु सुनानो चाहूंगो.

इन चिकने ताजे नये हरे पत्तोंके सायेमें,
फिर प्यार नया हो सकता है.

हर दंत समयका जो लगता मानव विशदंत नहीं होता,
उस मानवके मनके उपर सब दिन बलवंत नहीं होता.
आहें उठतीं, आंसु झरते, सपने पीले पड़ते लेकिन,
जीवनमें पतझड़ आनेसे जीवनका अन्त नहीं होता.
इन चिकने नये ताजे हरे पत्तोंके सायेमें,
फिर प्यार नया हो सक्ता है''.

श्रीमहाप्रभुजी अपनकु वा तरहसुं कृष्णके सक्नेहको उपदेश देनो चाह रहे हैं के जाके उपदेशसुं अपन विषमताकी सारी बाधाएं वैसे ही पार कर सकें के जैसे बिल्वमंगल सूरदासने वाकी बाधाएं पार करी हती. अपनी प्रियतमाकु मिलवे जाते समय बीचमें नदी आ गई तो तैरके चले गये. प्रियतमाके मकानकी खिड़कीमें सांप लटक रह्यो हतो तो रस्सी समझके ऊपर चढ गये. सांप भले हतो पर ऊपर तो चढ ही गये. या प्रकारके उमंग और उत्साहकी कथा है. उनकी प्रियतमा लौकिक हती, अपनो प्रियतम कृष्ण तो कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथाकर्तुं समर्थह्नसर्वसमर्थ है. फिर घबड़ानेकी बात क्या है? करके श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं:''सेव्यः सएव गोपीशो विधास्यत्यखिलं हि नः''. तुम वाकी सेवामें अपने आपकु जोड़ दो, घबडानेकी कोई बात नहीं है.

''कालोऽयं कठिनोऽपि श्रीकृष्णभक्तान् न बाधते'' ये अपनो सिद्धान्त है. आप ध्यानसु समझो, काल कठिन हो सके है पर कृष्ण कठिन नहीं हो सके है. कृष्ण तो बड़ो कोमल है. पर सवाल ये है के वा कोमल कृष्णकेलिये आपकु अपनो हृदय कोमल बनानो पड़ेगो. वा कोमल कृष्णकेलिये तुमकु अपने विचार कोमल बनाने पड़ेंगे, अपनी वाणी कोमल बनानी पड़ेगी, अपने व्यवहार कोमल बनाने पड़ेंगे, अपनो आखो परिवेश कोमल बनानो पड़ेगो. और जब अपन कठोर होनेके चक्करमें उलझेंगे तो धीरे-धीरे हर चीज कालकी तरह कठोर होती चली जायगी. इतनी कठोर हो जायगीके जैसे अजगर खुदके कठोर सिकंजामें अपनेकु जकड़के निगल जाय है ऐसे कालरूपी अजगर अपनकु निगल जायगो. तो कालकी वा कठोर जकड़सूं अपनेकु बचावेकेलिये श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं के ''शूर ह्वैके काहे घिघियात है कछु भगवल्लीला गा''. वा भगवल्लीलाकु अपन प्रभुसेवामें कैसे जी सके हें वो बात श्रीलालूभट्टजीने यहां बहुत सुन्दरतासुं समझायी है.

भगवत्प्राकट्यके अनेकविध प्रयोजन:

प्रभु अपने प्राकट्यके अनेक हेतुएं गिनावे हैं, इनमेंसुं गीतामें कह्यो है:

''यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर् भवति भारत
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्,
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।

साधूनके परित्राणकेलिये, दुष्कर्म करवेवालेन्के विनाशकेलिये और धर्मके संस्थापनकेलिये भगवान् अवतीर्ण होवे हैं. ये तो प्रभुके गिनाये भये हेतुएं हैं. परन्तु प्रभुने नहीं गिनाये हैं ऐसे भी प्राकट्यके प्रयोजन भागवतादि पुराणन्में वर्णित हैं.

वरदान परिपालनार्थ प्राकट्य:

रामावतारमें तपस्वी ऋषिन्कु प्रभुने वरदान दियो हतो. रामावतारमें वो कार्य सिद्ध होनो सम्भव नहीं हतो अत: आपने तपस्वीन्के मनोरथकु श्रीकृष्णावतारमें पूर्ण कियो. या प्रकार वरदानके परिपालनकेलिये भी प्रभु प्रगट भये हैं. श्रीरामको अवतार भी कोई वरदानकी सार्थकताकेलिये ही भयो हतो. ऐसे ही नृसिंह अवतार, वामन अवतार आदि भगवान्के अनेक अवतार भी वरदानकी सार्थकताकेलिये ही भये हते.

अभिशापभोगार्थ प्राकट्य:

याके अलावा ऐसो भी भयो है के कोई-कोई अभिशापन्कु प्रभुने स्वेच्छया स्वीकारे हैं. उन अभिशापन्के तहत भी प्रभु प्रकट भये हैं. जैसे रामावतारकी ही बात लें तो श्रीरामने बालीकु मार्यो. वाने रामसुं पूछ्यो के आपने ऐसो क्यों कियो? श्रीरामने बड़ी सहजतासु कह दियो के अगली बार तु मोकु तीर मार लीजो तो प्रभु ऐसे भी प्रकट भये हैं. प्रभुमें अभिशापकु अन्यथा करवेकी सामर्थ्य नहीं है ऐसी बात नहीं है. सामर्थ्य तो हैही. परन्तु आपने अभिशापकु स्वेच्छया स्वीकार्यो हतो ये प्रभुकी विलक्षणताहै.

भक्तियोगवितानार्थ प्राकट्य:

परन्तु प्रभुके प्राकट्यको एक अनोखो प्रयोजन है जो कुन्तीजी अपनकु बतावे हैं के 'भक्तियोगवितान'केलिये अर्थात् भक्तियोग के प्रसारकेलिये भी प्रभु प्रकट होवे हैं. अर्थात्, प्रभुकी भक्ति करवेकी इच्छावालो कोई जीव भूतलपे प्रकट भयो है तो वाकेलिये भी प्रभु प्रकट होवे हैं. क्योंके यदि प्रभु प्रकट नहीं होवें तो वो जीव भक्ति कैसे कर पायगो? जीवके भीतर मूलमें भक्तिको बीजभाव तो रह्यो भयो है. परन्तु वो बीजभाव भी अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित तब होयगो के जब

प्रभु प्रकट होंयगे.

प्रभुके एक अवतारमें कोई एक ही प्रयोजन होवे ऐसी बात नहीं है. अपन कोई एक स्थानमें जावें पर जावेके प्रयोजन दस हो सके हैं. ऐसे ही प्रभुको प्राकट्य भी कोई एक ही प्रयोजनवश होनो आवश्यक नहीं है. अनेक प्रयोजनवश एक प्राकट्य हो सके है और कोई एक प्रयोजनवश अनेक प्रकाट्य भी प्रभुके हो सके हैं.

तो संक्षेपमें अपन यों कह सकें के प्रभुको प्राकट्य जैसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की व्यवस्थाकु सुधारवेकेलिये होवे है ऐसे ही भक्तियोगके प्रसारकेलिये भी होवे है.

अवतारकालमें भगवान् ड्राइवर् हैं:

प्रभुके प्राकट्यको प्रयोजन समझनो हम सबन्केलिये बहुत आवश्यक है, खास करके वा बखत के जब प्रभु प्रकट नहीं बिराज रहे हैं. जब, परन्तु, प्रभु प्रकटे हैं वा बखत समझकी आवश्यकता नहीं है, वा बखत तो प्रभुके सम्मुख होयवे मात्रकी आवश्यकता होवे है. क्योंके वा बखत समझवाले हिस्साकु तो स्वयं प्रभुने संभाल रख्यो होवे है. या बातकु आप गाड़ी चलायवेवालो और गाड़ीमें बैठे भये यात्रिके उदाहरणसुं समझ सको हो. जैसे आपकु दिल्लीसूं किशनगढ़ जानो है. आपने बस पकड़ली. बसको ड्राइवर दिल्लीसुं किशनगढ़के रस्तामें आते सब दायें-बायें मोड़न्कु जानतो होवे है. वो बड़े आरामसुं आपकु किशनगढ़ ले आयेगो. अंजान आदमी भी गाड़ीकु सही दिशामें सावधानीसुं चला सके वाकेलिये रस्ताके उपर दांयें-बांयें मोड़के सूचक पतीया और पथ्थर लगाये जावें हैं. यासु यत्रि ये भी जान सके है के वाने कितने माईल्को सफर तय कियो है. परन्तु, समझो के, जो व्यक्ति इन सब बातन्कु जाने ही है, जैसे टेक्षी-ड्राईवर या बस-ड्राईवर, वाकु गाडी चलाते समय माईलके पथ्थरन्कु देखवेकी आवश्यकता होवे है? वाकु सूचनापट्ट पढ़ने पड़े हैं? नहीं. बिना पढ़े भी वो वाहन चला सकेगो. वो बिना माईलके पथ्थरन्कुं देखे भी बता सकेगो के किशनगढ़ पहुंचनेमें अब कितनी देर है. और मान लो के आपकु किशनगढ़को रस्ता पता नहीं है और आपकु खुदकी गाड़ी चलाके किशनगढ़ पहुंचनो है. तब तो आपकु सावधानीसु गाड़ी चलानी पड़ेगी. नहीं तो ये सहज सम्भव है के आप किशनगढ़के बजाय कहीं ओर ही पहुंच जाओ. अत: आपकेलिये ये आवश्यक है के आप उन सब बातन्को ध्यान रखो. बसको ड्राइवर् सूचनापट्टन्कु नहीं देखे है वासु ये सिद्ध नहीं होवे है के आपकु भी उनकु नहीं देखनो. ऐसे ही, अपनेलिये जाननो आवश्यक है वाको ये अर्थ भी नहीं कियो जा सके है के तो फिर बस-ड्राइवरकु भी वो सब जाननो आवश्यक है. इन दोनों बातनकु ध्यानमें रखोगे तो आगेकी बात समझमें आयगी.

अनवतारकालमें अपन ही ड्राइवर्:

प्रभु जा बखत प्रकट बिराजते होवे हैं वा बखत तो प्रभुके सम्मुख होवे मात्रसुं भी हमारे भीतर भक्ति प्रकट हो सके है. परन्तु जा बखत प्रभु प्रकटस्वरूपसुं नहीं बिराजते होवे हैं वा बखत भी केवल भगवत्सम्मुख होयवेके प्रकारसुं ही भक्ति प्रकट हो जायगी ऐसी दुराशा नहीं रखनी चहिये. ये खोटी आशा है. ऐसो क्यों? क्योंके अवतारकालमें तो प्रभु अपने पुरुषार्थन्सुं, अपने प्रयासन्सुं ही जीवकु अपने सम्मुख करे लेवे हैं. परन्तु जब प्रभु प्रकट नहीं बिराजे हैं वा बखत तो अपनकु अपने प्रयासके द्वारा प्रभुके सम्मुख होनो पड़ेगो. ऐसे समयमें अपनकु अत्यन्त सावधानी रखनी पड़ेगी. क्योंके कैसे प्रयास अपन करेंगे तो अपनी प्रभुसम्मुखता सच्ची सम्मुखता होयगी और कैसे प्रयास करेंगे तो अपनी प्रभुसम्मुखता सच्ची सम्मुखता नहीं होयगी वाकी सावधानी अपनकु रखनी पड़ेगी.

सावधान अनवतारकाल है:

मैनें छप्पनभोगको उदाहरण समझायो हतो. लोग छप्पनभोगके दर्शन करवे जाते होवे हैं. उनसुं पूछें तो कहेंगे के ''प्रभुसम्मुख होवे जा रहे हैं''. पर, भले आदमी तुम प्रभुके सम्मुख हो रहे हो के सामग्रीन्के सम्मुख हो रहे हो वा की क्या गेरन्टी ? कैसे पता चलेगी? वाको कछु निकश तो होनो चहिये? क्या तुमने अपने मनकु टटोल्यो? जाने छप्पनभोगको आयोजन कियो है वा आयोजकको हेतु टटोल्यो के वो कौनसे हेतुसु छप्पनभोगको आयोजन कर रह्यो है? वो तुमकु प्रभुसम्मुख करवेकेलिये मनोरथ करवेसुं पहले खुदके पैसासुं छप्पनभोग करके खुद ही क्यों प्रभुसम्मुख नहीं हो जावे है? गामसुं क्यों पैसा बटोरे है? एक रहस्यकी बात आपकु बताउं हूं, ध्यानसुं देखियो, जो छप्पनभोगको आयोजक होवे है वो श्रीठाकुरजीके सम्मुख नहीं लोगन्की भीड़के सम्मुख खड़ो रहतो होवे है. वो ये ही देखतो रहे है के कितने लोग आये, कितने लोग बाकी रह गये. श्रीठाकुरजीकु पंखा भी करे तो भी लोगन्कु देखते भये करतो होवे है. श्रीठाकुरजी यहां बिराजते होयेंगे और देखतो वहां होयगो. कारण क्या? वाको हेतु प्रभुसम्मुखता को नहीं है. ऐसे ही दर्शन करवे जावेवालेन्को हेतु भी प्रभुसम्मुखताको नहीं होवे है. सामग्री सिद्ध करवेवालेन्को हेतु भी प्रभुसम्मुखताको नहीं होवे है. तो इन सब बातन्कु विचारके अपनकु सावधानी बरतनी पड़ेगी, जब गाडी अपनकु खुद्कु चलानी है.

अवतार–अनवतारकालको भेद समझो:

सावधानी बरतवेकेलिये अपनेमें सिद्धान्तको ज्ञान होनो आवश्यक है. अवतारकालमें तो, जैसे मैनें पहले कही, प्रभुने खुदने सावधानीको हिस्सा बस–ड्राइवर्की तरह स्वयंके हाथमें ले लियो होवे है.

यासुं यात्रि यदि बसमें सो भी गयो होवें तब भी स्टेशन आयवेपे कंडक्टर वाकु जगा देतो होवे है. यासुं सोतो भयो आदमी भी अपने स्थानपर पहुंच जातो होवे है. ऐसे ही भक्तिकी गाड़ी जब प्रभु चला रहे होवे हैं तब यदि अपन सोते (नि:साधन) भी होंयगे तब भी अपनकु जहां प्रभु पहुंचानो चाहते होयेंगे वहां अपन पहुंच जायेंगे. परन्तु जब अपनकु खुदकु अपनी गाडी चलानी पड़े और तब अपनकु नींद आ जाय तो तब तो अपन कहीं ओर ही पहुंच जावें. तो समझो के सावधानी रखनी आवश्यक है. प्रभुके प्राकट्यकाल और अप्राकट्यकाल के बीच इतनो प्रभेद है.

दोनों कालमें भक्ति वो कि वो है. यात्रा वो कि वो है. अर्थात्, अहन्ताममताके कारण सांसारिक वस्तुन्में होती अपनी लौकिक आसक्तिसुं भगवदासक्तिकी ओर बढवेकी यात्रा वो कि वो है. वा यात्राके मीलके पथ्थर, सूचनापट्ट, दांयें-बांयें मोड उनके (अर्थात् अवतारकालीन् भक्तन्के) और अपने (अनवतारकालीन भक्तन्के) अलग-अलग नहीं हैं. फिर भी वो सोते भये भी मुकाम पर पहुंच जायेंगे और यदि अपन सो गये तो सर्वनाश हो जायगो. अत: अपनकु जागरूक रहनो पड़ेगो, क्योंके गाड़ी अपन चला रहे हैं. तो, प्रभुके प्राकट्यकाल और अप्राकट्यकाल को अन्तर अपनकु समझनो पड़ेगो नहीं तो प्रभुके सम्मुख होयवेमें भी कछु घपला अपन कर बैठेंगे.

सेवा-लीलामें अनुरूपताकी मात्रा:

अवतारलीलामें जीवकी भक्तियात्रामें जो भी क्रम घटित भयो है वामें लीलास्थ जीवकु ऐसो दिखलायो गयो है के मानो वो सो रह्यो है, कोई सावधानी नहीं है, अपने काममें लग्यो भयो है और अचानक प्रभुने वाकु अपनी ओर खींच लियो. या बखत तो, परन्तु, लीला प्रकट नहीं है. साधन अपनकु स्वयंकु करने हैं. ऐसे समयमें अपनेद्वारा करी जाती प्रभुसेवाकु लीलाके अनुरूप बनावेकेलिये लीलावर्णनमेंसु कौनसो अर्थ लेनो ओर कौनसो छोड़नो? अधिकारी दोनों समयमें भिन्न-भिन्न हैं. तब दोनोंकी पारस्परिक अनुरूपता कैसी होनी चहिये? अब मैं आपकु ये बात समझानो चाह रह्यो हुं.

कोई लडकाकी शादीकेलिये परिवारवाले एक लडकी देखने गये. घर आके लडकाकु कही के ' 'लडकी तो बडी सुन्दर है, चांदके जेसो वाको मुख है''. ये सुनके तो लडका रोवे लग्यो. वाने सोच्यो के चांदकु बाल तो होवे नहीं है. याको मतलब ये भयो के वाके माथापे टाल है. अर्थ नहीं समझवेके कारण ऐसे घपला हो सके हैं. ऐसे ही लडकीकु आके कोई कह दे के तेरे लिये तो हम शेरके जैसो लडका पसन्द करके आये हैं. और ये सुनके लडकी रोवे लग जाये के हाय हाय मेरे लिये तो पूंछडीवालो चोपगा लडका खोज लाये वाकु समझानो पड़ेगो के ' 'शेर जैसो'' कहवेको अर्थ ये नहीं है के वाकु

शेरकी तरह चार पांव और पूंछ है. हम तो कोई दूसरे अर्थमें वाकु शेर कह रहे हैं. तो लीलाके अनुरूप सेवा ओर सेवाके अनुरूप लीला जब अपन कह रहे हैं तब वामें भी अनुरूपताको प्रमाण अपनकु निश्चित करनो पड़ेगो.

सेवामें लीला और लीलामें सेवा की अनुरूपताको प्रमाण निश्चित करते बखत सबसु पहले स्पष्ट समझनो पड़ेगो के लीलामें प्रभु स्वतः प्रकट हैं. लीलामें प्रभु स्वतः प्रकट होयवेके कारण जीवकु अपने सम्मुख करवेके सारे प्रयासनकी जिम्मेदारी और सावधानी भी प्रभु स्वयं ही निभाते होवे हैं. याके सामने अनवतारकालमें सेवामें प्रभुकु प्रकट अपनकु करनो है. प्रभुकु प्रकट ही नहीं करनो है, प्रभु प्रकट बने रहें वाकी सावधानी भी अपनकु रखनी है. (या प्रसङ्गपे पुष्टिभक्तिमार्गकी स्वरूपमें भावप्रतिष्ठा और मर्यादामार्गकी मूर्तिमें देवप्रतिष्ठा को प्रभेद भी समझनो उपकारक होयगो).

पूजामार्गमें मूर्तिमें देवत्व कहां तक?

अपने यहां तो कोई दूसरो सिद्धान्त और भाव वर्णित कियो गयो है करके (अत:) ये बात अपने यहां लागु नहीं होवे है परन्तु मर्यादामार्गमें, जहां देवमूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा की जाय है वहां मूर्तिमें देवत्व कब तक रहे है और कब देवता मूर्तिमेंसु विसर्जित हो जावे है वाको बड़ो सुन्दर खुलासा दियो गयो है. मान लो के कोई मूर्तिमें आपने देवकी प्राणप्रतिष्ठा की और वाको देवके रूपमें पूजन भी प्रारम्भ कियो. अब, तीन दिन तक यदि वो देवमूर्ति अपूजित रह गई तो वो पत्थर हो जावे है, देव नहीं रह जावे है. जा मूर्तिमेंसु देवत्व तिरोहित हो गयो है ऐसी देवमूर्तिके पूजनकी शास्त्रमें निन्दा है. या ही कारणसुं देवमूर्ति दीख गई करके पूजा करवे लग जानो ऐसो अपने शास्त्रको सिद्धान्त नहीं हतो. अपन पत्थरकु नहीं पूजे हैं, देवकु पूजे हैं. और देवकु भी अपन कहां पूजे हैं के जहां देवमूर्तिमें देवको आवाहन करके प्रतिष्ठापन कियो गयो होवे वहां. कितनेक मूर्ख लोग यों समझे हैं के हिन्दुलोग पत्थरकु पूजे हैं, धातुकु पूजे हैं. अरे तुमकु ये बात कौनने कही? हम तो देवकु ही पूजे हैं, न तो पत्थरकु पूजे हैं न धातुकु पूजे हैं. पत्थर तो दुनियामें कितने सारे हैं धातु तो दुनियामें कितनी सारी हैं, जयपुरके मूर्ति महोल्लामें चले जाओ; दुकाननमें कितनी सारी मूर्तिएं रखी भई हैं उन सबनकु कोई पूजे है क्या? नहीं पूजे है. एक बात ध्यानसु समझो के ये आधुनिक लोग रस्तान्पे नहेरुजी, गांधीजी, आंबेडकरजी, ढीकड़ेजी-पूंछड़ेजी के पुतलाएं खडे करके वाकु माला चढाते फिरे हैं. अपने यहां ऐसे ढंगसु पुतलानकु माला नहीं चढाई जाय है. अपन तो देवकी पूजा करे हैं. देवकी पूजाको मतलब क्या? जहां देवको आवाहन करके वाकी प्राणप्रतिष्ठा करी गई होय वाके साथ पूजाके माध्यमसु पूज्य-पूजकताको सम्बन्ध निभायो जाय है. तुम पूजा करवेवाले हो वो पूज्य है. अब यदि तुम्हारे और वाके बीचमें पूजाको सम्बन्ध कायम रह्यो तो वो

देव है, पूजाको सम्बन्ध कायम रह्यो तो तुम पूजक हो. और यदि पूजाको सम्बन्ध टूट्यो तो शास्त्रके हिसाबसुं न वो देव रह जावे है और फूल चढायवे पर भी न तुम पूजक ही रह जाओ हो. शास्त्रने ये सूक्ष्मता अपनकु समझाई है. क्यों समझाई है? क्योंके अपन यों समझे हैं के फूल-पत्ता-पानीको मूर्तिपर चढा देनो पूजा है. परन्तु समझो, फूल-पत्ता-पानी चढानो वो फूल-पत्ता-पानीको दुरुपयोग भी हो सके है. शास्त्र स्पष्ट कहे है के पूजा कब कहलायेगी के जा बखत पूजाको नैरन्तर्य वहां निभ रह्यो होवे. और पूजाको नैरन्तर्य कहां निभायो जा सके है? जहां देवको आवाहन होय, प्रतिष्ठा होय, देवोचित मर्यादासुं सतत वाकी पूजा चालु रहे तो पूजाको वो सम्बन्ध वाकु पूज्य देव बनावेगो और तुमकु वाको पूजक बनायगो. जैसे कोई एक लडका और लडकी साथ-साथ रह रहे होवें तो इतने मात्रसुं वो शास्त्रके हिसाबसु पति-पत्नी नहीं माने जायेंगे. पति-पत्नी कब कहवावें के जब उनको हथलेवा (हस्तमिलाप-कन्यादान) भयो होय, जब उनने फेरा फिरे होंय. अन्यथा तो वो लडका-लडकी हैं, स्त्री-पुरुष हैं. कोईको स्त्री या पुरुष होनो सम्बन्धकी स्थापनाको विषय नहीं होवे है. वो तो उनको स्वरूप है. जो स्त्रीस्वरूप प्राणी है वो स्त्री है ओर पुरुषस्वरूप जो प्राणी है वो पुरुष है. पति-पत्नी होनो कोई सम्बन्धकी अपेक्षा रखे है. वैसो सम्बन्ध यदि लडका-लडकीके बीचमें स्थापित भयो होवे तो वो पति-पत्नी हैं. याकु आप बहुत कठिन बात मत समझो. ये बहुत स्पष्ट बात है. शास्त्रीय विवाहकी बातकु एक ओर रखें तो कानूनके हिसाबसुं भी ये ही बात है. यदि आपने मेरेज् के रजीस्टरमें हस्ताक्षर करे हैं के ये पति है और ये पत्नी है, हम दोनों एक-दूसरेकु पति-पत्नी माने हैं तो कानूनके हिसाबसुं आप दोनों पति-पत्नी माने जाओगे, अन्यथा तो स्त्री-पुरुष ही कहलाओगे. ऐसे ही जा बखत आवाहन-प्रतिष्ठा पूर्वक पूजनकी निरन्तरतासुं जा बखत सम्बन्ध स्थापित रह रह्यो है तब वो 'देव' कहवावे है. और तब वो पूजक कहवावे है. पूजाको सम्बन्ध ही एककु देव बनावे है और दूसरेकु पूजक बनावे है.

प्रभुके सङ्ग भक्तिसुं जुडनो कैसे?

ऐसे ही श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के कृष्णके आकारवालो होवे मात्रसुं कोई मूर्ति कृष्णस्वरूप नहीं हो जावे है. यदि आपको भक्तिभाव और भक्तिमय सम्बन्ध वाके साथ स्थापित है तो वो कृष्ण है, और तो आप भक्त हो. यदि वा मूर्तिके साथ आपको भक्तिभावमय सम्बन्ध नहीं है तो न वो कृष्ण रह गयो और न आप कृष्णभक्त रह गये. बात अपने यहां भी वो की वो ही है पर वहां (मर्यादाभक्तिमें) पूजाको विधान शास्त्रविधिके अनुसार बाह्यक्रिया और आन्तरिक श्रद्धा इन दो पर अवलम्बित है. वासु थोडो अलग हटके श्रीमहाप्रभुजीने भक्तिको प्रकार बतायो है. भक्तिको प्रकार भगवान्के माहात्म्यज्ञान और माहात्म्यज्ञानके बाद भगवान्के प्रति भक्तके सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह पर अवलम्बित होवे है. माहात्म्यज्ञानको अर्थ है: भगवान्के विषयमें अपनी समझ. और सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह को मतलब

होवे है: अपने हृदयको प्रभुके प्रति भाव. भक्तिको प्रकार इन दोके उपर अवलम्बित होवे है. इनसुं भक्तिके सम्बन्धको प्रारम्भ होवे है.

भक्तिको सम्बन्ध कैसे निभे?

भक्तिको सम्बन्ध निभे है: नवधाभक्तिसुं. ये सम्बन्ध श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन सु निभे है. तनुवित्तजा सेवासु वो सम्बन्ध निभे है. अपने घरमें अपने श्रीठाकुरजीकु पधराके सेवा करवेसु वो सम्बन्ध निभे है. ये सम्बन्ध है क्या? ध्यानसुं समझो, वो सम्बन्ध प्रभुकी सच्ची समझ और प्रभुके प्रति सच्चो भाव है. ''माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः सक्हेो भक्तिः'' ये वचन अपनकु ये कहे है के प्रभुको स्वरूप अच्छी तरहसु समझो? और वाकु समझके प्रभुके प्रति सच्चे भावसुं अभिमुख हो. तब वो भक्ति कहवावेगी.

भक्तिको ये नाता-रिश्ता भगवान्‌के साथ निभेगो कैसे? वाकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने सेवा और कीर्तन की प्रणालीका बतायी है: ''सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर् दृढा भवेत्, यावज् जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर् मम''. सेवा और कथा को प्रकार भक्तिके सम्बन्धकु निभावेकी बात है. जैसे कोईकी शादी हो गई होवे परन्तु पतवी मायके रह रही है, पति परदेशमें रह रह्यो है. शादी तो हो गई पर क्यों दोनोंन्‌को दाम्पत्य निभ रह्यो है? ऐसी शादी भई तो क्या और नहीं भई तो क्या ऐसे ही प्रभुकी सच्ची समझ और प्रभुके प्रति सच्चो भाव होनो वो भक्तिके सम्बन्धकी स्थापना है. जब अपनने भक्तिको सम्बन्ध प्रभुके साथ स्थापित कियो है तो वा सम्बन्धकु निभावेकी भी सिफत (चतुराई-गुण), श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के, हमारे अंदर होनी चहिये.

सेवा-कथासुं भक्ति निभेगी:

भक्तिके सम्बन्धकु निभावेकी सिफत अपने यहां सेवा अथवा कथा; अथवा सेवा और कथा है. ये अपने यहांको एक सेटप् है, एक प्रकारको ढांचा है. या ढांचाकु खास समझनो चहिये. ध्यानसुं देखोगे तो आपकु ये बात समझमें आ जायगी के यदि प्रभु प्रकट हैं तो वा ढांचाकु निभावेकी जिम्मेदारी प्रभुकी है. और जब प्रभु प्रकट नहीं हैं तो याकु निभावेकी जिम्मेदारी जीवकी आ जाय है. जीव यदि सेवा-कथाकु निभायगो तो ये निभेगो और यदि नहीं निभायगो तो ये ढांचा चरमराके ढह जायगो.

पुष्टिधन कहीं लुट न जाय

जयपुरमें पन्नाकी खदानके मालिक कोई वैष्णव हते. खदानसुं उनकी बहुत कमाई भयी हती.

सारो धन उनने अपने घरमें ही कहीं छुपाके रख्यो हतो. एक दिन उनको और उनके बेटाको झघड़ा हो गयो. बेटाने आयकर विभागमें रिपोर्ट् करदी के हमारे पिताजीने फलानी जगह बेहिसाबी धन छुपाके रख्यो है. आयकर विभागकी वहां इन्क्वायरी शुरू भई. बेटाने ही रिपोर्ट् लिखवाई हती तो धन तो निकलनो ही हतो. बहुत सारो पैसा निकल्यो. सरकामें सब पैसा जप्त हो गयो. वो बड़े आदमी हते यालिये बहुत वकीलें खुद आयके कहवे लगे के हम सब हिसाब-किताब सरकारकु समझा देंगे, आपकी समस्या सुलझा देंगे, आपको पैसा पाछो मिल जायगो. उनने कही के भाई पैसा पाछे मिलवेकी अब आवश्यकता क्या हे? मैं पैसाकु मेरे साथ ऊपर लेके तो जावेवालो हतो नहीं. छोड़के तो बेटाकेलिये ही जावेवालो हतो. अब जब बेटाने ही रिपोर्ट् कर दी है फिर चिन्ताकी बात ही क्या है? जावे दो पैसाकु. बेटाने नहीं लीयो तो सरकार ले जाय मैं क्यों छुड़ावेकी माथाफोड़ी करुं? ऐसे कहके वो तो घूमवेकेलिये शिमला चले गये. शेठकी बात भी ठीक हती. जाकेलिये उनने धन इकठ्ठो कियो हतो वाने ही फरीयाद करी तब उनकु क्यों चिन्ता करनी? तो ये बात समझो के वा शेठकी तरह भगवान् भी कहीं अपनेसुं मुंह न मोड़े लें. क्योंके भगवानने भी अपने जैसे जीवन्केलिये ही तो सुगोप्य भक्तिकी व्यवस्था प्रकट करी है. इतनो ही नहीं, आप स्वयं वा व्यवस्थाके माध्यमसु अपनसुं जुड़वे तैयार भये हैं. ओर आज अपन लोग क्या कर रहे हैं? शेठके बेटाकी तरह अपन वा सुगोप्य पुष्टिभक्तिकी रिपोर्ट सारे संसारमें कर रहे हैं के आज यहां छप्पनभोग होवेवालो है, आज हिंडोराको मनोरथ है. और जब संसारीन्की रेड अपने यहां पड़े है तब भगवान् भी अवश्य कहते होंयगे के ' ' जाने दो अब तो इनकु संसारमें, हमारो कहा जावे है? जिनकेलिये मैने इतनी अमूल्य भक्तिकी व्यवस्था प्रकट की हती वो खुद ही जब इन्ट्रेस्टेड नहीं हैं तो मेरेकु क्या लेनो-देनो''.

तो या बातकु ध्यानसुं समझो के जब प्रभु प्रकट नहीं है वा बखत तो जो कछु भी पुष्टिको धन जमा करके रख्यो भयो है वाकु निभावेकी वाकु बढायवेकी जिम्मेदारी जीवन्की है, प्रभुकी नहीं है. प्रभुने तो तुम्हारे ही लिये पुष्टिधन जमा कियो हतो. अब जब तुम ही रिपोर्ट् कर रहे हो के हमारो पुष्टिधन यहां रख्यो भयो है, आओ करो दर्शन. जब सारो गाम तुम्हारो धन देख गयो तब तो समझो के तुम्हारो पुष्टिधन गयो. तो या बातकु ध्यानसुं समझो के इन सब बातन्की सावधानी अपनकु बरतनी पड़ेगी. सावधानी अपन बरत सकें वाकेलिये वा बातकी समझ भी हांसिल करनी पड़ेगी यासुं श्रीलालूभट्टजी आगेको क्रम बता रहे हैं.

' ' अत: आधुनिकानां त्रिविध पुष्टिभक्तानां साधनसापेक्षत्वाद् आदितः आरभ्य सेवा-श्रवणादिप्रकार: तामसादिगुण-निवृत्तिप्रकारश्च आध्यात्मिकरीत्या निरूप्यते''.

आधुनिक भक्तन्कुं यहां बात समझाई जा रही है. 'आधुनिक'को मतलब क्या? आधुनिक वो कहे जावे हैं के जिनने स्वयं भगवान्के सङ्ग भक्तिको सम्बन्ध स्थापित कियो है और वा सम्बन्धकु निभावेकी जिम्मेदारी भी उनके ही ऊपर है. लीलास्थ जीवन्के ऊपर भगवान्के साथ भक्तिको नाता स्थापित करके वा नाताकु निभावेकी जिम्मेदारी नहीं हती, वो जिम्मेदारी भगवान्की हती. भगवान्द्वारा सारी सावधानी बरतवेसुं भक्तिको नाता स्थापित भी हो रह्यो हतो और निभ भी रह्यो हतो. परन्तु जा बखत प्रभु प्रकट नहीं बिराजे हैं वा बखत तो भक्तिके नाता-रिश्ताकु स्थापित करवेकी और वाकु निभावेकी भी जिम्मेदारी अपने ऊपर आ जाय है. तो जा बखत वो जिम्मेदारी अपने ऊपर आ रही है वा बखत लीला और सेवा की परस्पर अनुरूपता कैसी है? वो प्रकार श्रीलालूभट्टजी यहां अपनकु समझा रहेहैं.

लीलामें जा प्रकारसुं कितनेक भक्त तामस हते, कितनेक भक्त राजस हते और कछु भक्त सात्त्विक हते ऐसे ही आधुनिक सेवा करवेवालेन्में भी कितनेक भक्त सात्त्विक होंयगे, कोई तामस होंयगे तो कोई राजस भी हो सके हैं. जीव तो दुनियामें पड्यो भयो है. दुनियामें जा प्रकारके अच्छे-बुरे गुण हैं वो गुण जीवमें भी घुस सके हैं. इन गुणन्कु प्राकृत गुण कहे जाय हैं. ये गुण तीन प्रकारके होवे हैं: १.सात्त्विक २.राजस और ३.तामस.

अब ध्यानसुं समझियो के यदि कोई ऐसो कहे के अपने प्राकृत स्वभावके ऊपर पूरो काबू पा लेवें तब जायके भक्ति हो सके. तब तो समझो के भक्तिकु चढादी एवरेस्टकी चौटी पे. ''न नौ मन तेल आवे और न राधा नाचे''. फिर तो भक्तिको प्रारम्भ ही सम्भव नहीं रहेगो. और यदि कोई ऐसे कहे के हम भक्ति तो अवश्य करेंगे पर हमारे स्वभावकु नहीं छोडेंगे. तब तो भक्ति भक्ति ही नहीं रह जायगी, कोई-न-कोई मुकामपे जाके स्थापित कियो भयो भक्तिको नाता पाछो टूट जायगो. क्यों? क्योंके हम भक्तिके अनुरूप नहीं होनो चाह रहे हैं. याकु आप उदाहरणसुं समझ सको हो.

बम्बईमें एक ब्याह भयो. लडकीवालेन्ने ब्याहमें एक-दो करोड रुपैया खर्च कियो. करोड रुपैया दहेजमें दियो. ब्याहके पीछे एक दिन पतिने पत्नीसुं एक गिलास पानी मांग्यो. पत्नीने कही के मैं तुम्हारी नौकरानी हुं जो पानीको गिलास तुमकु दउं तीसरे-चौथे दिन वो पाछी घर आ गई. वाने सबकु कह दियो के ससुरालमें तो मोकु सब नौकरानी समझ रहे हैं. लडकी वालेन्ने कही के हमने लडकीकु मफतमें थोडी भेजी हती. तो एक बात समझो के जो पति-पत्नी आपसमें एक-दूसरेकु पानीको गिलास

भी देवेकेलिये तैयार नहीं होवें उनको दाम्पत्त्य कितने दिन चल सके? एक करोड रुपैया शादीमें खर्च कियो, एक करोड रुपैया दहेजमें दियो फिर भी दाम्पत्य नहीं निभ्यो. कारण क्या? देने-लेनेमें तो कोई कमी नहीं रह गई हती न जो भी कछु दियो जा सकतो हतो जो भी कछु लियो जा सकतो हतो सब दियो गयो और लियो गयो. पर कमी कहां रह गई के एक-दूसरेकी अपेक्षा क्या है वो पूछे बिना ही लेन-देन हो गयो. एक-दूसरेके अनुरूप नहीं हो पाये. तो या बातकु ध्यानसु समझो के परस्पर एक-दूसरेकी अपेक्षाकु समझनो और अनुरूप होनो सभी सम्बन्धनूमें बहुत आवश्यक होवे है. दाम्पत्यकु स्थापित करनो एक कथा है और वाकु निभानो दूसरी कथा है. ऐसे ही कोई मूर्ति या चित्र कु या गिरिराजजी या शालीग्रामजी कु भगवान् मान लेनो एक कथा है और वाके साथ भक्त जैसो व्यवहार निभानो दूसरी कथा है.

सम्बन्ध निभावेकेलिये भक्तिसाधना:

श्रीलालूभट्टजी कहे हैं के प्रभुके सङ्ग भक्तिको सम्बन्ध निभावेकेलिये कछु साधना भी करनी पड़ेगी तभी वो सम्बन्ध निभेगो. यदि तुमने साधनाकु तोड़ दी या छोड़ दी तो तुम्हारो भक्तिको सम्बन्ध निभेगो नहीं.

ऐसे ही एक भाईकी कथा आपकु सुनाउं हुं. एक भाई ब्रह्मसम्बन्ध लेवे मेरे पास आये. मैने वाकु बहुत समझायो के भाई ब्रह्मसम्बन्ध मत ले, तेरो नुकशान होयगो. वो तो अड़ गयो. वाने कही के लेनो ही है. बड़ी समस्या हो गई. हमने वाकु 'प्रवेशिका' और 'प्रवेश' दो परीक्षाकी पुस्तक दी. वो पढ्यो लिख्यो आदमी हतो. मैने कही के पहले इन पुस्कनूकु पढके समझ ले के ब्रह्मसम्बन्ध क्या है, क्यों लेनो चहिये, ब्रह्मसम्बन्ध लेवेके बाद तेरी क्या जिम्मेदारी है ... वो तो पुस्तकनूकु पढके पाछो आ गयो. मैने पूछ्यो ''पुस्तक पढ ली?'' तो वाने कही ''हां, पूरी पढली''. वो सच बोल रह्यो है के नहीं ये जांचवेकेलिये मैने वामेंसु कछु सवाल भी वासुं पूछे. जो-जो सवाल मैने पूछे उन सबनूके वाने सच्चे-सच्चे जवाब भी दे दिये. मैने पूछ्यो के ''तोकु सब बात समझमें आई?'' तो वाने कही ''सब बात समझमें आ गई''. मेरे मनमें भी सन्तोष हो गयो. तब मैने कही के अब भले आनन्दसुं ब्रह्मसम्बन्ध ले ले. ब्रह्मसम्बन्ध लेवेके थोड़े दिन पीछे एक दिन वो फिर मेरे पास आयो. वाने कही के ''मेरे जो ठाकुरजी हैं उनकी तो मैं सेवा करुं हुं. परन्तु हमारो एक मन्दिर और है. वहांके ठाकुरजीकी सेवाकेलिये भी मोकु जानो पड़े है''. मैने वासु पूछ्यो के ''जब तुम मन्दिरके ठाकुरजीकी सेवाकेलिये जाओ तब तुम्हारे ठाकुरजीको क्या होवे?'' तो वो बोल्यो के ''जितने दिन वहां सेवा करवे जाउं उतने दिन वा ठाकुरजीकु (अलमारी) कबाटमें बंध करके जाउं, वापस आउं तब फिरसु सेवा शुरू कर दउं हूं''. मैं

सोचतो रह गयो के ये क्या चक्कर हो गयो? वाने पुस्तकें भी पढली हती, पुस्तकन्कुं समझ भी गयो हतो. प्रवेशिका और पुष्टिप्रवेश किताब भी सरल हैं. कोई कठिन किताब नहीं हैं. आपके तो बच्चाएं भी सत्तर-अस्सी प्रतिशत् मार्कस् लावे हैं. और ये पढ्यो-लिख्यो आदमी जब ऐसे कहे तो अब कहां जानो मैने पूछी: ''दो-दो ठाकुरजी पधराये ही क्यों? एक ही ठाकुरजी पधराने चहिये हते''. तो बाल्यो के ''क्या करुं, वहां तो जानो ही पड़े है. नहीं जाउं तो हमारे परिवारवाले नाराज हो जायें''. मैने कही: ''परिवारवालेन्के नाराज होवेकी तोकु चिन्ता है पर तेरे माथे बिराजते ठाकुरजीके परिश्रमकी तोकु जरा भी चिन्ता नहीं है? ये क्या बात भई?'' फिर मोकु भी गुस्सा आ गयो. मैने कही के ''एक बात समझ के यदि मेरेसु पूछे तो तेरे घरमें जो बिराजे हैं वो ही तेरो सच्चो ठाकुर है, दूसरो ठाकुर खोटो है. तुमकु यदि दो बेटा होते और एक बेटा दूसरे गाम रहेतो होतो वासु तुमकु मिलवे जानो होतो तो एक बेटाकु क्या तुम घरके कबाटमें बंध करके जाते''. वो चुप-चाप चल्यो गयो. तो बात समझो के सम्बन्ध तो अपन स्थापित कर लेवे हैं पर सम्बन्धकु निभानो कठिन है. सम्बन्धकु निभावेमें बहुत सावधानीकी जरूरत पड़े है. या प्रकारको सम्बन्ध क्या भक्तिको सम्बन्ध हो सके है? ये कोई सवेह है? ये भक्ति है? भक्तिकु स्थापित करनो सरल है पर ऐसी भक्तिकु निभानो कठिन है.

एक बात समझो के मूर्तिकु कबाटमें बंध करनो पाप नहीं है. मूर्ति यदि कीमती है तो वाकु कबाटमें ही तो रखेंगे परन्तु जाकी तुम भक्ति कर रहे हो वो मूर्ति है के भगवान् है ये नक्की करो. यदि तुम वाकु भगवान् मान रहे हो तो कबाटमें बंध करके कैसे गये? और यदि तुम वाकु पत्थर या पीतल की मूर्ति मान रहे हो तो फिर वाकी भक्ति क्यों कर रहे हो? पत्थर-पीतलकी मूर्तिमें भक्ति करने जैसो है क्या? वो तो सजावटकी चीज है अपने घरमें एक काचवाले अच्छेसे कबाटमें वा मूर्तिकु सजाके रखो. लोग भी आके देखेंगे तो कहेंगे के वाह क्या सुन्दर मूर्ति सजाके रखी है. तुम्हारे घरकी शोभा भी बढेगी. वाकेलिये परन्तु मूर्तिकी भक्ति करनी जरूरी नहीं है. सजावट करनी है तो सजावटकी समझ जरूरी है. और यदि भक्ति करनी है तो वाकेलिये दूसरी तरहकी समझ जरूरी होवे है. और वो समझ है साधनकी. या बातकु श्रीलालूभट्टजी समझा रहे हैं के तुम साधनसापेक्ष हो. तुम साधनसु निरपेक्ष नहीं हो सकोगे.

भक्तिको सम्बन्ध स्वसेव्यके सङ्ग जोड़ो:

आधुनिक त्रिविध भक्त साधनसापेक्ष हैं. उनकु साधनकी सावधानी रखनी पड़ेगी. क्योंके भक्तिको सम्बन्ध बड़ो नाजुक है. जैसे अपन मूर्तिकु सजाके ड्रोइंग-रूम में रख दे हैं वैसो मूर्तिकु सजानो भगवान्के सङ्ग भक्तिको सम्बन्ध नहीं है. मूर्तिकु नहीं भी सजाओ तब भी भक्तिको सम्बन्ध निभ सके है. एक

बात समझो, बहुत सारे भगवदीय ऐसे हते के जिनके पास प्रभुकु शृंगार धरावेकेलिये कछु भी आभरण नहीं हते. कोईके पास केवल गुञ्जामाला हती तो उनने केवल गुञ्जामाला प्रभुकु धराई. कोईके पास गुञ्जामाला भी नहीं होवे तब भी कोई चिन्ताकी बात नहीं है, भक्तिको सम्बन्ध शृंगारन्को-भोगन्को मोहताज नहीं है. भक्तिको सम्बन्ध मूलतः तुम्हारे भजनीय भगवत्स्वरूपके प्रति भक्तिके भावकुह्नसेवा तथा कथा के भावकु निरन्तर निभावेकी एक प्रक्रिया है. सेवा और कथा के भावकु जा बखत तुम निभा रहे हो तो तुम्हारो वा स्वरूपके सङ्ग भक्तिरूप सम्बन्ध निभ्यो. और जा बखत तुमने सेवा और कथा को भाव तोड़दियो वा बखत तुम वा मूर्तिकु भले सजा रहे होगे, भोग भी धर रहे होगे, भागवतकी कथा भी सुन रहे होगे परन्तु वा भगवत्स्वरूपके साथ तो तुमने भक्तिको सम्बन्ध तोड़ ही दियो. या बातकु ध्यानसु समझो.

कथाभक्तिकु भी स्वसेव्यसुं जोडो:

मतलब, भगवान्की लीलाकी जो कथाएं हैं उन कथान्कु जा बखत तुम सुनो हो वा बखत तुम्हारे हृदयमें ये भाव जगनो चहिये के मैं ये जो भी कथाएं सुन रह्यो हुं वो सब मेरे माथे बिराजते मेरे सेव्यस्वरूपकी कथाएं हैं तब तो तुम्हारो वा भगवान्के साथ कथा-भक्तिको सम्बन्ध निभ्यो. और जब तुम्हारे मनमें ऐसो विचार आयो के मैनें जो कथाएं सुनी वो तो कृष्णकी हती. मतलब तुमने अपने सेव्यस्वरूपके साथ तो कथाको नाता तोड़ दियो. क्योंके तब तुम ऐसे सोच रहे हो के कृष्ण कोई ओर है और तुम्हारी मूर्ति कोई ओर है. अब फिर वो भगवान् नहीं है, अब वो पीतल या पत्थर की मूर्ति केवल है. या बातकु ध्यानसु समझो के वो तुम्हारी भक्तिको भगवान् तब हतो के जब कथाभक्तिको नाता तुमने वाके साथ निभायो हतो, जब तुम्हारे अन्दर ये भाव हतो के ये सब कथा मेरे ठाकुरकी कथा है. ऐसे भावसु यदि तुमने कथा सुनी होती तब तो तुमने अपने ठाकुरके सङ्ग कथाभक्तिको जो नाता स्थापित कीयो हतो वाकु निभायो. और जब तुमने ऐसे सोच्यो के वो तो कृष्णकी कथा है, मतलब के तुमने अपने ठाकुरसुं तो कथाभक्तिको नाता तोड़ दियो.

ऐसे ही जा बखत तुम सेवा कर रहे हो वा बखत तुम्हारी ये समझ साफ-साफ होनी चहिये के जाकी हमने कथा सुनी वाहीकी हम सेवा कर रहे हैं, कोई पीतल या पत्थर की मूर्तिकी सेवा हम नहीं कर रहे हैं. जब तुम्हारी समझ ऐसी है तब तुमने सेवाको सम्बन्ध अपने सेव्यस्वरूपके सङ्ग निभायो कह्यो जायगो. परन्तु तुम जा भगवत्कथाकु सुनो हो वाकु यदि अपने सेव्यस्वरूपकी कथा नहीं मान सको हो तब तुमने अपने सेव्यके साथ सेवाभक्तिको नाता तोड़ दियो. तुम सेवा भले ही कर रहे होगे पर वो सेवाकी केवल क्रिया कही जायगी, सेवाभक्ति नहीं कही जायगी. सेवाकी क्रिया करनो एक बात

है और सेवाभक्ति करनो अलग बात है. 'सेवाभक्ति'को मतलब है के जा स्वरूपकी तुम सेवा कर रहे हो वाके बारेमें तुम्हारो ये विचार साफ होनो चहिये के ये वोही स्वरूप है के जाकी कथा मैनें सुनी है, ये वोही स्वरूप है के जो वसुदेवके वहां जन्म्यो, नन्दरायजीके वहां ले जायो गयो, नन्द-यशोदाने वाको नन्दमहोत्सव कियो, पालन-पोषण करके वाकु बड़ो कियो, वाके घरमें पूतना याकु मारवे आई हती पर वाकु याने मार दीह्लइन सारी बातनूकु जब तुम अपने ठाकुरके बारेमें सोचोगे तब तुम जो सेवाकी क्रिया कर रहे होगे वो 'भक्ति' कहलायेगी.

साधनसापेक्षता:

अब ध्यानसुं समझो के तुमने जाकी कथाएं सुनी वो तुम्हारो सेव्यस्वरूप है, वो ही कृष्ण है या प्रकारको भाव यदि तुम्हारे भीतर होयगो तो भगवान्‌के साथ भक्तिको नाता निभेगोह्लऐसी समझ कौनकु होनी चहिये? सेवाकर्ताकु अथवा भगवान्‌कु? भगवान्‌कु ऐसी समझकी क्या आवश्यकता है? भगवान् तो निरपेक्ष हैं. ये समझ तो अपनूकु होनी चहिये. तो समझलो के यहां अपनी साधनसापेक्षता सिद्ध हो गई. यदि उन साधननूकु अपन निभा रहे हैं तो वहां वाकी भगवत्ता निभ रही है. और जा बखत तुमने उन साधननूकु निभावेमें कचास बरती वाही समय जैसे बल्बको फ्यूझ् उड़ जाय और वामेंसु प्रकाश निकलनो बन्ध हो जाय है ऐसे ठाकुरजीको भी फ्यूझ् उड जाय है. तब वहां ठाकुरजीको आकार तो रहे है पर ठाकुरजी नहीं रहे हैं. क्योंके तुमने भक्तिको वो नाता रख्यो नहीं. अब तो वहां वो रूप है जाको तुमने नाता रख्यो है. तुमने अब वाके साथ कौनसो नाता रख्यो है के ''ये तो कृष्णकी पत्थरकी मूर्ति है जो मेरे घरमें बिराज रही है. याकेलिये कछु-कछु क्रियाएं मोकु करनी पड़ रही है''. करते रहो जो कछु करनो होवे सो. वो थोड़ी ना पाड़े है. वाकु तुम ठंडे जलसु नहवावोगे तो भी ना नहीं पाडेगी, वापे उबलतो जल डालदोगे तो भी ना नहीं पाडेगी. क्यों? क्योंके तुम भक्तिको नाता तो निभा नहीं रहे हो. न तुम भक्त हो न वो भगवान् है. तुम चेतन हो वो जड है. तुमकु जो करनो है सो करो. भगवान् भी सोचतो होयगो के मैं तो वहां उपस्थित ही नहीं हुं. अब तो तुम छे-छे घंटा क्या चौबीस-चौबीस घंटा भी मूर्तिके दर्शन खोलो, बजाते रहो घंटा, वामें मेरो क्या गयो मेरो माथा नहीं पकेगो. घंटा बजावेसुं माथा कौनको पके? जाके कान होंय. यहां तो पत्थरकी मूर्ति है, वाको माथा क्यों पकेगो

बात छिड़ी है तो समझ लो के अपने यहां आरती थोड़ी देर क्यों करे हैं? ध्यानसु समझो के आरती करवेमें भाव तो अच्छो है पर इतनी देर तक तो घंटा नहीं बजानो चहिये के जासुं प्रभुकु परिश्रम होवे. करके (या कारणसुं) अपने यहांकी आरतीएं छोटी-छोटी होवे हैं. कोई छे श्लोककी आरती होवे है तो कोई चार श्लोककी आरती होवे है. क्यों? क्योंके आरती करनो हमारो काम है पर साथ-साथ

वामें तुमकु परिश्रम नहीं होवे ये सावधानी भी हम रखेंगे. तो अपने यहां या बातकी सावधानी बरती गई है के भई भगवान्‌को माथा व्यर्थमें मत चाटो. प्रभुके परिश्रमको विचार अपने यहां वहां तक कियो जाय है के प्रभुकु जब अपन जगावे हैं तब झांझ-मृदङ्ग नहीं बजाये जांय हैं, केवल कीर्तनगान होवे है. वो भी बहुत धीमे सुरन्में. ऐसे ही जब प्रभुकु पौढावें तब भी ' 'जय जगदीश हरे'' ऐसे चिल्ला-चिल्ला के नहीं बोलें हैं, बड़े ध्यानसु मन्दस्वरमें आलाप कर-करके अपन प्रभुकु पौढावे हैं. तो ऐसे अपनने प्रभुके परिश्रमको विचार कीयो है.

तो सेव्यस्वरूपकु भगवान् मानवेको एक भाव अलग है और मूर्ति मानके वाकु पूजवेको भाव अलग है. मूर्ति मानके वाकु पूजनो शास्त्रसु विहित है. वैसे पूजनो भी कोई गुनाह नहीं है परन्तु वो भाव अपने यहां स्वीकार्यो नहीं गयो है. अपने यहां सेव्यके परिश्रमको भाव विचार्यो गयो है. अपने यहां सेव्यके सुखको भाव विचार्यो गयो है के अपनी क्रियासु वाकु कोई परिश्रम न होवे. उदाहरणके तौरपे आप समझो के ठाकुरजीकु स्नान करावेकी विधिमें अपने यहां ये बात स्पष्ट कही गई है के स्नान करावेसुं पहले जल समोनो चहिये. अर्थात्, जल न अधिक गरम होनो चहिये न अधिक ठंडो होनो चहिये. आदमीकु जैसे समशीतोष्ण जलसुं स्नान करनो सुहातो होवे है वैसे समशीतोष्ण जलसुं प्रभुकु स्नान करानो. यामें भी बड़ेन्ने कितनी सूक्ष्म बात सोची है वाकु विचारो के जल समोयो भयो है के नहीं वो उंगली डालके नहीं देखनो चहिये. क्यों? क्योंके उंगलीके नखमें कचरा होवे वो जलमें चल्यो जाय तो कितनी महीन बात है ये. ये सब महीन सावधानी कौनकेलिये रखी हैं? पत्थरकी मूर्तिकेलिये? पीतलकी मूर्तिकेलिये? नहीं. वाकु अपन्ने अपनो भगवान् मान्यो है, अपन्ने अपनो नाता वासुं भक्तके रूपमें जोड्यो है, वाके और अपने बीच भक्तिको नाता बन्यो है. अपन वाकी सारी सावधानी रखेंगे.

एक व्यक्ति अपने ठाकुरजीकु पधराके प्लेनसु कहीं जा रहे हते. प्लेनमें यात्रा करवेवाले यात्री कीमती सामान हेन्डबेग् में अपने सङ्ग रखते होवे हैं और बाकीको सामान लगेज् में रख देते होवे हैं. वाकु रखवेकी जगह अलग होवे है. इन महाशयके पास कोई बहुत कीमती सामान होयगो जासुं उनने ठाकुरजीकी झांपीकु लगेज् में भिजवा दी. हवाई अड्डे वालेन्की भूलसुं वाके ठाकुरजीकी झांपी कोई दूसरे विमानके लगेज् में चली गई. जब प्लेन उतर्यो तब झांपी तो मिली नहीं. या भाईको नियम हतो के ठाकुरजीकी पूजा किये बिना भोजन नहीं करनो. उनने तो हवाई अड्डावालेन्सुं कह दियो के पूजा किये बिना हम भोजन नहीं करेंगे, भूखे रहेंगे. बड़ी दौड़-धाम मची. हवाई अड्डे वालेन्ने कही के दूसरो प्लेन आयगो वामें तुम्हारो सामान यहां आयगो. ये घटना हमकु जाने सुनाई वाने हमकु कही के देखो कितने बड़े भगवदीय हते के पूजा किये बिना उनने भोजन नहीं कियो. मैने उनसुं कही के भगवदीय हते

के नहीं ये तो मोकु पता नहीं है. हां, अच्छे पुजारी मानने तैयार हुं. क्योंके यदि अच्छे भक्त होते तो लगेज् में ठाकुरजीकु कभी भी नहीं भिजवाते. प्लेनमें यात्रा करवेवाले कीमती सामान अपने पास रखते होवे हैं. रुपैयाके पाकिटकु कोई यात्री लगेज् में नहीं भेजतो होवे है. तुमने रुपैया जितनी कीमत भी अपने ठाकुरकी नहीं मानी और उनकु लगेज् में भिजवा दिये अब तुम वा ठाकुजीकी पूजा किये बिना भोजन करो के मत करो यासु भक्तिको कोई सम्बन्ध नहीं है. तुम्हारो पूजाको आग्रह सिद्ध भयो होयगो. वा आग्रहकी मैं निन्दा नहीं कर रह्यो हुं. यामें सम्भवत: अच्छी धार्मिकता सिद्ध होती होयगी पर अच्छी भक्ति सिद्ध नहीं हो रही है. भक्त कभी ऐसे नहीं सोचेगो. तुम अच्छे भक्त होते तो ठाकुरजीकु लगेज् में भिजवाते ही नहीं.

तो समझो के ऐसी कितनीक सावधानीयां हैं जिनकु भक्तिमें तुमकु निभानी पड़ेगी. भगवान्‌कु तुम लगेज् में भिजवाओगे या साथ पधराके जाओगे वो तुमकु कछु नहीं कहेगो. भगवान् तो बिचारो चुप-चाप बैठ्यो भयो तुम जो कर रहे हो वाकु देखतो रहेगो. और तुम जैसो सम्बन्ध वाके सङ्ग निभाओगे वैसो वो निभातो रहेगो, वो कोई दखल नहीं करेगो. जा दिन भगवान् दखल करे के ''हट् नालायक मोकु लगेज् में क्यों भिजवा रह्यो है?'' तो समझो के ठाकुरजी प्रकट हो गये. अब जिम्मेदारी वाने लेली. अब साधनकी अपेक्षा तुमकु नहीं रही. अब तो ''सैंया भये कोतवाल अब डर काहेका''. पर जब तक वो याकी सावधानी नहीं बरत रह्यो है, जब वो दो लप्पड़ तुम्हारे गालपे नहीं मार रह्यो है तब तक वाकी सावधानी तुमकु बरतनी पड़ेगी. यदि तुमने वो सावधानी बरती तो भक्ति है, नहीं बरती तो तुम अच्छे धार्मिक हो सको हो, अच्छे पूजक हो सको हो पर अच्छे भक्त तो नहीं ही हो सको हो. तुम्हारो भाव गड़बड़ा गयो. या बातकु समझाते भये श्रीलालुभट्टजी कह रहे हैं के ''पुष्टिभक्तानां साधनसापेक्षत्वात्''.

पुष्टिभक्त साधनकी अपेक्षा रखे है. जब वो साधनकी अपेक्षा रखे है तब उन साधनन्‌के अनुरूप सेवा-श्रवणको प्रकार क्या है वो जानके जब तुम सेवा श्रवण करोगे तो तुम्हारो लौकीकभाव धीरे-धीरे भक्तिमें खिल उठेगो. प्रभुकी भक्ति करवेकेलिये तुमकु तुम्हारे घर, परिवार अथवा शरीर कु केन्सल् करवेकी आवश्यकता नहीं है. तुम या ही देह, या ही परिवार, या ही घर, या ही अपनी अहन्ता-ममता सुं भगवान्‌की भक्ति आनन्दसु कर सकोगे, परन्तु या तरहकी सावधानी तुमकु बरतनी पड़ेगी. यदि ये सावधानी तुमने नहीं बरती तो तुम्हारो भक्तिको सम्बन्ध खण्डित् हो जायगो ये बात श्रीलालुभट्टजी बतावे हैं:

''आधुनिक त्रिविधपुष्टिभक्त साधनसापेक्ष होयवेसुं उनकेलिये आरम्भसुं सेवाश्रवणादिको प्रकार और तामसादि गुणन्की निवृत्तिको प्रकार कह रह्यो हुं''.

निर्गुणता:

ऊपर श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के ''तामसादि गुणन्की निवृत्तिको प्रकार'' तो तामसादि गुणन्की निवृत्तिको मतलब ये है के अपने तामस भावमेंसुं राजस भाव खिलनो चहिये, राजस भावमेंसुं सात्त्विक भाव खिलनो चहिये और सात्त्विक भावमेंसुं अंतमें निर्गुण भाव खिलनोचहिये.

निर्गुणभाव अपने यहां श्रीयमुनाजीको मान्यो गयो है. 'श्रीयमुनाष्टक'में श्रीमहाप्रभुजीने वाकु वर्णित कीयो है. वो आखी प्रक्रिया अपने यहां सेवाप्रकारमें मालाकी तरह गूंथी गई है. यासुं श्रीलालुभट्टजीने एक बहुत सुन्दर बात बताई है के भगवत्सेवा और भगवान्की लीलाके श्रवणादि ऐसे करने के जासुं वो एक-दूसरेके पूरक बन जायें. दोनोंन्कु एक-दूसरेके पूरक और अनुरूप बनायवेसु अपने भीतर रहे भये तामसभावमेंसु एक निर्गुणभाव प्रकट हो जायगो.

एक बात ध्यानसुं समझो के तामसभावमें ये सामर्थ्य नहीं है के वो निर्गुणभावकु स्वीकार सके परन्तु निर्गुणभावमें ये सामर्थ्य है के वो तामसभावकु स्वीकार सके. आप कहोगे के यदि निर्गुणभावमें तामसभावकु स्वीकारवेको सामर्थ्य है तो तामस भावमें भी ये सामर्थ्य होनो चहिये के वो भी निर्गुणभावकु स्वीकार सके. परन्तु थोड़ोसो ध्यानसु सोचोगे तो आपकु ये बात समझमें आ जायगी के नये शहरमें (किशनगढको एक छोटो कसबा) ये सामर्थ्य नहीं है के सारे किशनगढकु वाके भीतर समा सके और न पुराने शहरमें (किशनगढको एक छोटो कसबा) ऐसी सामर्थ्य है के सारो किशनगढ वाके भीतर समा सके. परन्तु जा बखत आप दोनोंकु किशनगढ मानके चल रहे हो तब फिर वामें नयो शहर भी आ जायगो और पुरानो शहर भी आ जायगो. दूसरे ढङ्गसुं आप सोचो तो जा जमानामें किशनगढ राज्य हतो वा जमानामें किशनगढमें रूपनगढ, सरवाढ, केकडी, सरकेडी आदि कितने ही गाम हते. यासुं वा जमानामें 'किशनगढ' कहवेसुं ये सारे गाम आ जाते हते. आज, परन्तु, आप यदि नया-शहर कहोगे, करकेडी कहोगे अथवा रूपनगढ कहोगे तो किशनगढ नहीं आयगो. यहां भी बिलकुल वो ही स्थिति है. 'निर्गुणभाव' कहवेसुं वामें तामस, सात्विक, राजसह्नसब भाव आ जायेंगे. परन्तु आप यदि तामसभाव कहोगे तब नयाशहर आयगो तो पुराना शहर नहीं आयगो; करकेडी आयगी तो डींडवाणा नहीं आयगो. क्योंके आप किशनगढको कोई न कोई सम्बन्ध पकड़ रहे हो, किशनगढकु वाकी समग्रतामें नहीं पकड़ रहे हो. निर्गुणभावको मतलब है: किशनगढकु वाकी समग्रतामें पहचानो. किशनगढकी समग्रतामें केवल

चार ही तलाब नहीं हैं, अनेक तलाब हो सके हैं. किशनगढकी समग्रतामें केवल एक ही बस्ती नहीं है, कई सारी बस्तिएं हो सके हैं. किशनगढकी समग्रतामें वन भी है और रण (मरुस्थल) भी है. रूपनगढकी ओर जाओगे तो मरुस्थल भी है और दूसरी बाजु जाओगे तो वन भी है. किशनगढकी समग्रतामें सब कछु मिलेगो पर वनमें मरुस्थल नहीं मिलेगो और मरुस्थल(रण)में वन नहीं मिलेगो. रण और वन जैसे आपसमें टकराती वस्तुएं हैं ऐसे ही सात्त्विकभावमें तामसभाव नहीं मिलेगो और तामसमें सात्त्विकभाव नहीं मिलेगो. परन्तु निर्गुणभाव यदि आपने पकड्यो, निर्गुणभावकु यदि आपने समझ्यो, निर्गुणभावकु यदि आपने मान्यो, निर्गुणभावकु यदि आपने जान्यो, निर्गुणभावकु यदि आपने अपने हृदयमें संजोयो(सञ्चितकियो) तो सारे भावन्कु आप संजो सकोगे. क्योंके निर्गुणभावको मतलब है: भगवान्कु वाकी समग्रतामें स्वीकारनो, भगवान्कु वाकी समग्रतामें अपने हृदयमे संजोनो. ''पञ्चधा हृदये मम''श्ञ्इपरिशिष्ट देखेंश्ञ्अह्नया तरहसु हृदयमें संजोनो निर्गुणभाव है. या निर्गुणभावकु प्रधानता देवेकेलिये श्रीमहाप्रभुजी ''पञ्चधा हृदये मम'' कह रहे हैं. याकेलिये श्रीलालूभट्टजी यहां समझा रहे हैं ''तामसादिगुणनिवृत्ति-प्रकार: आध्यात्मिकरीत्या निरूप्यते''.

सेवासाधनासुं प्रभुको अपने घरमें प्राकट्य:

भागवतके दशमस्कन्धमें प्रथम चार अध्याय प्रभुके जन्मप्रकरणके हैं. भगवान् अपने चार व्यूहन्के सङ्ग मथुरामें प्रकट भये ये प्रभुकी एक लीला है. श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के प्रभुके प्राकट्यकु तुम ऐसे मत समझियो के वो केवल द्वापरकी ही कथा है. द्वापरमें प्रभुको प्राकट्य (अवतार) लीलासुं सम्बन्धित बात हती और आजकी तारीखमें ये सेवासुं सम्बन्धित बात है. अवतारलीलामें प्रभु जैसे कारागृहमें प्रकटे भये हते वैसे आज भी प्रभु तुम्हारे घरमें प्रकट हो सके हैं. बस, एक ठाकुरजी तुम्हारे घरमें पधराओ. तुम्हारो घर भी कारागृह है. क्योंके तुम अपने घरमें तुम्हारी अहन्ता और ममता की बेडीन्में जकडे भये हो.

घर=कारागृह:

तुम्हारे घरपे कोने रंग लगा दियो, पत्थर फेंक दियो तो तुमकु गुस्सा आ जायगो. घरमें को पूछे बिना घुस गयो तो गुस्सा आ जायगो. देखो, अपनी अहन्ता-ममताकी बेड़ीसुं अपन् घरमे बंधे भये हैं के नहीं? जैसे वसुदेव-देवकी जेलमें बंधे भये हते वैसे अपद अपने घरमें अपनी अहन्ता-ममताकी बेडीन्में बंधे भये हैं के नहीं? उनकी बेडीएं कमसु कम दीखती तो हती, अपनी बेडीएं तो ऐसी सूक्ष्म हैं के दीखे भी नहीं हैं, वाकु तोड़नी कैसे? ऐसी सूक्ष्म बेडी हैं के अपन्कु पता भी नहीं चले है के अपन बंधे भये हैं. तो अपनो घर भी एक मायनेमें कारागृह है के नहीं? अपन भी अपनी अहन्ता-ममताकी

बेडीमें हाथ-पैर दोनों बंधवाके घरमें कैद हैं, बिलकुल वाही प्रकारसुं के जा प्रकारसुं वसुदेव-देवजी कंसके कारागृहमें कैद हते. वा कंसके कारागृहमें कृष्ण प्रकट्यो के नहीं प्रकट्यो? उनकी कैद होवेकी स्थितिमें कृष्ण प्रकट्यो के नहीं प्रकट्यो? ऐसे ही तुम्हारे घरके कारागृहमें भी कृष्ण प्रकट सके है. और जैसे उनकी बेडीएं टूटी ऐसे अपनी भी अहन्ता-ममताकी बेडीएं टूट सके हैं. ये कथा लीलाकी नहीं है ये कथा सेवाकी है. या सेवाके अनुरूप वहां लीला हती और वा लीलाके अनुरूप यहां सेवा है. श्रीलालूभट्टजी ये बात समझा रहे हैं के ये दोनों वा तरहसु एक-दूसरेके अनुरूप हैं. अब यामें वो चांदवाली बात मत सोचियो.

एकने कोकी प्रशंसा करी के जा लडकीके सङ्ग तेरी बात चला रहे हैं वा लडकीको मुख चांद जैसो है. लडका ये सुनके रोवे लग्यो. मतलब के लडकी गंजी(बालबिनाकी) है, क्योंके चांदकु तो बाल होवे नहीं है या तरहसुं खोटो अर्थ समझके लडका रोवे लग जाय तब तो मुश्किल हो ग न समझवेकी बात ये है के चांद जैसे सुन्दर मुखवाली लडकी है, गंजी होनो वाको मतलब नहीं है. परस्पर अनुरूपताकी भी कछु मर्यादा होवे है. यासु जब अपन् ये कह रहे हैं के लीला सेवाके जैसी है और सेवा लीलाके जैसी है तो ये सुनके को रोवे लग जाय के वो तो द्वापरकी कथा हती. नन्द-यशोदा तो बड़े भाग्यवाले हते. ऐसे भाग्य हमारे कहां. मतलब, अर्थ समझे बिना तुम वा लडकेकी तरह रो रहे हो के लडकी गंजी है. श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं के भा चांदके जैसी सुन्दर लडकी तेरेलिये देखके लायो. तु तेरे घरमें ठाकुरजी पधराले और देख तेरे घरमें प्राकट्यमहोत्सव होवे है के नहीं. तेरो घर भी कारागृह है. यामें तु अहन्ता-ममताकी बेड़ीमें वाही तरहसुं जकड्यो भयो है के जा तरहसुं वसुदेव-देवकी जकड़े भये हते. परन्तु तेरे कारागृहमें भी कृष्णके प्राकट्यसुं परमानन्द प्रकट हो सके है. बेडी वा ही क्षणमें टूट सके है, कंस तेरो कछु बिगाड़ नहीं सकेगो. 'कंस' मतलब कलिकाल. कलिकाल तेरो कछु भी बिगाड़ नहीं सकेगो. कलिकाल भले ही सारी दुनियामें फैल्यो भयो होवे पर तेरे घरमें कलिकाल घुस नहीं सकेगो. कलिकालके पहरेदारनूकु भी कृष्णके प्रकाट्यके साथ नींद आ जायगी. उनकु ये पता ही नहीं चलेगो के कृष्ण चुप-चाप कैसे प्रकट हो गयो. इतनो ही नहीं, कृष्णकु संभालनेके सारे उपाय भी इकट्ठे हो गये, कृष्णकु माथे पर पधराके पाछे आ गये तब तक भी उनकु पता नहीं चली. इतनी सामर्थ्य हो सके है सेवाकी लीलानुरूपतामें और लीलाकी सेवानुरूपतामें.

कल अपनने लीलामें भगवत्प्रादुर्भाव और सेवामें भगवत्प्रादुर्भाव की परस्पर कैसी अनुरूपता है वो देख्यो. वा बारेमें दो-एक खुलासा और जान लेने जरूरी हैं फिर अपन आगे चलेंगे.

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के लीलामें जो प्रादुर्भाव होवे है वो को व्यक्तिविशेषकेलिये नहीं होवे है पर समुदायकेलिये होवे है. यामें प्रमाण क्या? जैसे श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध, कपिल आदि अवतार प्रकट भये तब भक्तकु भी उनके दर्शन होते हते, जो भक्त नहीं हते उनकु भी दर्शन होते हते और जो दुश्मन हते उनकु भी भगवान्के दर्शन होते हते. पर अपन या हकीकतकु जाने हैं के ध्रुवकेलिये जब ठाकुरजी प्रकटे तब ध्रुवकु ही दर्शन दिये, सबन्कु दर्शन नहीं दिये. अपन या बातकु भी जाने हैं के गीतामें भगवानने विश्वरूपके दर्शन अर्जुनकु करवाये तब सब लोग आजु-बाजु खड़े हते पर विश्वरूपताके दर्शन अर्जुनके अलावा ओर कोकु नहीं भये, केवल अर्जुनकु ही भये. यासुं अपन ये समझ सके हैं के वो रूप भक्तविशेषकेलिये प्रकट कियो गयो रूप हतो. और जो रूप लीलामें प्रकट होवे है वो सर्वसाधारणकु दर्शन देवेकु प्रकट होवे है. या स्थितिमें अपने यहां (पुष्टिभक्तिमार्गमें) सेवामें जो स्वरूप प्रकट होवे है वाको क्या रोल है? भक्तविशेषके उपर कृपा करवेकु वो प्रकट होवे है अथवा सर्वसाधारण लोगन् पर कृपा करवेकु?

समर्पित केलिये भगवत्प्राकट्य:

श्रीमहाप्रभुजीने याको बड़ो सुन्दर खुलासा समझायो है. अपने यहां पुष्टिप्रभुको प्राकट्य सर्वसाधारणकेलिये नहीं है. क्यों? क्योंके भगवत्सेवा अपने यहां समर्पणके कारण शुरु होवे है. अपने-आपकु अपन भगवानकु समर्पित करे हैं. वो समर्पण अपन सर्वसाधारणको तो नहीं करे हैं न जैसे मैं जा बखत ठाकुरजीके सामने तुलसी हाथमें लेके आत्मसमर्पण करतो होउं तब मैं यों तो नहीं कह सकुं के ''मैं सारे किशनगढको समर्पण कर रह्यो हूं''. मैं तो बस ये कह सकुं के मैं मेरो समर्पण कर रह्यो हूं, मेरो परिवार के जाकु मैने अपनी अहन्ताके कारण मेरो मान रख्यो है वाको मैं समर्पण कर रह्यो हूं. परन्तु जिनकु मैं मेरो नहीं मानतो होउं, जिनकु मैं जानतो ही नहीं होउं उनको समर्पण मैं कैसे कर सकु हूं? एक बात बताउं के दिल्लीको राष्ट्रपतिभवन बहुत सुन्दर है. मैं कहुं के भगवान् राष्ट्रपतिभवन आपके चरणमें समर्पित करुं हूं. ये तो मजाक हो गई न राष्ट्रपतिभवनको समर्पण मैं कैसे कर सकुंगो मैं राष्ट्रपति नहीं हूं. राष्ट्रपतिभवन मेरो नहीं है. वो मेरी ममतासु जुड्यो नहीं है तो वाको समर्पण कैसे हो सकेगो जिनने समर्पणकी दीक्षा ली है वे या बातकु अच्छी तरहसु समझे हैं. समर्पण करते समय वे अपने परिवार आदिको ही उल्लेख करे हैं के मेरी पतकी, मेरो पुत्र, मेरे सगे-सम्बन्धी, मेरो घर, मेरो धन इन सबको मैं प्रभुकु समर्पण करुं हूं, मैं प्रभुको दास हूं. तो ये बात ध्यानसु समझो के समर्पणके कारण सेवाको अधिकार आयो है. अत: समर्पित भक्तकेलिये प्रभुको प्राकट्य है. जैसे ध्रुवके सामने जो प्रकटे वो ध्रुवकेलिये ही प्रकटे, सबकेलिये नहीं प्रकटे. कृष्णने अर्जुनकु विश्वरूपको दर्शन करायो तब केवल अर्जुनकु ही कही हती के ''दिव्यं ददामि ते चक्षु: पश्य मे योगमैश्वरम्''. वहां सब लोग खड़े भये हते

पर कोईकु वो हकीकत दिखलाई नहीं दी. केवल अर्जुनकु दिखलाई दी. परन्तु कृष्णके रूपमें प्रभु जब प्रकटे तब सर्वसाधारणकेलिये प्रकटे हते. वो केवल भक्तकु ही दिखलाई दिये ऐसी बात नहीं हती, सो गाली जाने दी हती ऐसे शिशुपालकु भी दिखलाई दिये हते. कंस जो श्रीकृष्णकु मारनो चाहतो हतो वाकु भी दिखलाई देते हते, पूतना जो जहर पिवानो चाहती हती वाकु भी दिखलाई देते हते. क्योंके प्रभु जा बखत लीलार्थ प्रकट होवे हैं तब व्यक्तिविशेषकेलिये नहीं पर सर्वसाधारणकेलिये प्रकट होवे हैं. और सेवार्थ जा बखत प्रभु प्रकट होवे हैं तब जो समर्पित भये हैं उनकेलिये प्रकट होवे हैं, असमर्पितन् केलिये वो प्राकट्य ही नहींहै.

भगवत्प्राकट्य समर्पितकेलिये:

या बातकु अपन एक दृष्टान्तसुं अच्छी तरहसु समझ सकेंगे. जैसे कोई एक समाज है. समाजने एक भवन बनायो के जामें समाजके लोगन्के शादी-ब्याह आदि कार्यक्रम हो सकें. वो भवन कौनकेलिये प्रकट्यो? वा समाजकेलिये. जैसे हिन्दु एक मन्दिर बनावे. वो मन्दिर कौनकेलिये बन्यो? हिन्दुकेलिये. मुसलमान एक मस्जिद बनावे तो वो मस्जिद कौनकेलिये बनी? मुसलमानकेलिये. अब अपन वहां जाके झगड़ा करें के अल्लाका घर है हमको इसमें हक्क दो. अरे भाई तुम जब तक मुसलमान नहीं हो, मुसलमान धर्मकी दीक्षा तुमने नहीं ली है तब तक वहां तुम्हारो हक्क कैसे बनेगो? ऐसे ही, मानलो के मुसलमान अपने यहां आके झघड़ा करे के मन्दिर हमारो है. अपन क्या कहेंगे? अपन कहेंगे के भई ये मन्दिर हिन्दून्केलिये बन्यो है तुम तुम्हारी मस्जिदमें जाओ. चर्च बनेगो तो क्रिश्चियनकेलिये बनेगो. वहां क्रिश्चियनको अधिकार रहेगो. ऐसे ही जो समर्पण करे है वाकु सेवाको अधिकार प्राप्त हो रह्यो है. जब सेवाको अधिकार आ रह्यो है तो वाकेलिये प्रभु प्रकट होवे हैं. करके श्रीमहाप्रभुजीने एक बहुत सुन्दर बात बतायी है:

‘ ‘ एनम् उद्धरिष्यामीति तदा मृदादेः प्रादुर्भूतः’’

(तत्त्वार्थदीपनिबन्ध सर्वनि.प्र.प्रकाश २२८)

‘ ‘ यथा प्रह्लादाद्यर्थं स्तम्भादिभ्य: प्रादुर्भाव: तथा अत्राऽपि एतस्यैव उद्धाराय प्रादुर्भावो, नतु साधारणतयेति सूर्यादिभ्य: शालग्रामाच्च अत्र अयं विशेष: इति अर्थ:’’ (तत्रैव आवरणभङ्गः).

भावार्थ:‘ ‘ याको मोकु उद्धार करनो है’’ ऐसी इच्छाके साथ भक्तने जो-जो समर्पित कियो है वाकु स्वीकारवेकेलिये प्रभुको प्राकट्य है.

उदासीन परिजनसुं सेवा मत करवाओ:

प्रभुको प्राकट्य जब समर्पितकेलिये है तब अपने घरमें प्रकट प्रभुमें अपनो जो भी कछु है वाको विनियोग भी होनो चहिये. करके श्रीमहाप्रभुजीने ''भार्यादिरनुकूलश्चेत् कारयेद् भगवत्क्रियाम्, उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत्'' आज्ञा करी है. अर्थात् अपने परिवारको जो भी सदस्य अपने समर्पणके भावसुं अनुकूल है, माने वाकु भी ऐसो लग रह्यो होवे के ''मेरे पिताने समर्पण कियो है अत: वा समर्पणके कारण मैं भी प्रभुकु समर्पित भयो हूं'' तो उन सबनकु प्रभुसेवामें सम्मिलित कियो जा सके है. पर यदि कोई घरको सदस्य कहे के ''भई समर्पण तो तुमने कियो है. तुम हमारे बाप हो याकेलिये सेवा करवेकेलिये हमारेपे जबरदस्ती नहीं कर सको हो''. तो वो उदासीन है. ऐसेसुं सेवा नहीं करवानी चहिये. क्योंके समर्पण जो भयो है वामें उनकी उदासीनता है. अपनने अपने तरफसुं उनको समर्पण कियो पर उनकी उदासीनताके कारण वो समर्पित नहीं हैं. जब वो उदासीन हैं तब ठाकुरजीको प्राकट्य उनकेलिये नहीं है. ये बात समझमें आ गई न अपन उनसुं कहेंगे के ''मैं तेरो बाप हुं. सेवा करेगो के नहीं एक डंडा मारूं गो''. ऐसे डंडा मारके बच्चान्सुं या पतकीसुं कराई गई सेवाकु ठाकुरजी स्वीकार नहीं करेंगे. क्योंके उनकेलिये ठाकुरजी प्रकट ही नहीं भये हैं. उनकेलिये ठाकुरजी प्रकट कब होते? समर्पणके भावमें वो उदासीन नहीं होते तब. अब जब वो स्वयं उदासीन हैं तो ठाकुर उनकेलिये प्रकट नहीं है. अपन उनसुं जबरदस्ती सेवा करावें तो वहां ठाकुर ही उनकेलिये प्रकट नहीं है तो सेवा कैसे स्वीकारेंगे? या लिये ''उदासीने स्वयं कुर्यात्'' ये सिद्धान्त महाप्रभुजीने समझायो है. श्रीलालूभट्टजी लिखे हैं:

''एनं उद्धरिष्यामि इति तदा मृदादे: प्रादुर्भूत:'' इति उक्त्वा मूर्तिरूपेण प्रभो: आविर्भावएव अङ्गीकृतः''.

सेवा स्वीकारार्थ भगवत्प्राकट्य:

ध्यानसु समझो के ठाकुरजीकु जब अपन घरमें पधरावे हैं तब अपनकु ऐसे नहीं समझनो चहिये के हम भगवानकी मूर्तिकु पधरा रहे हैं. अपनकु ये समझनो चहिये के गोकुलमें जैसे कृष्णके रूपमें परमात्मा प्रकट भयो ऐसे हमारे घरमें ये मूर्तिके रूपमें परमात्मा स्वयं प्रकट भयो है. अपनेमें ये सामर्थ्य नहीं है के अपन मूर्तिके रूपमें कहीं प्रकट हो सकें. समझो के मोकु मेरी मूर्ति घडवानी होय तो मैं स्वयं मूर्तिके रूपमें प्रकट नहीं हो सकुंगो. मोकु जयपुरमें मूर्तिकार मोहल्लामें जानो पड़ेगो के ले भाई मेरो फोटो खींच और मूर्ति बना दे. मूर्तिकारमें ये सामर्थ्य है के वो मेरी मूर्ति बना सके पर मेरेमें ये सामर्थ्य नहीं है के मैं मूर्तिके रूपमें प्रकट हो सकुं. जीवकी ये असामर्थ्य प्रभुपे लागु नहीं होवे है. क्योंके प्रभु तो सारे जगतके रूपमें प्रकट भयो है वाकु मूर्तिके रूपमें प्रकट होवेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है, वाके सामर्थ्यपे

कोई बाधा नहीं आवे है. अपन यों समझें के मूर्ति पथ्थरकी है या धातुकी है. पथ्थर-धातुकी है पर वा पथ्थर-धातुकी मूर्तिके रूपमें प्रभु प्रकट नहीं हो सके ऐसो असमर्थ प्रभु नहीं है. प्रभु समर्थ है. करके प्रभु जो समर्पित हैं उनकी सेवा लेवेकेलिये प्रकट होवे हैं. या ही लिये ''असमर्पित वस्तूनां तस्माद् व्रजनमाचरेत्'' जो असमर्पित है उन वस्तून्को उन व्यक्तीन्को वर्जन करो, अवोईड् करो.

लीलार्थ और सेवार्थ ऐसे प्रभुके दो प्रकारके प्राकट्य हैं. दोनोंमें परन्तु इतनी खासियत है के लीलार्थ प्रभु सर्वसाधारणकेलिये प्रकट होवे हैं और सेवार्थ प्रभु सेवककेलिये प्रकट होवे हैं अथवा सेवकके समर्पित परिवारकेलिये प्रकट होवे हैं. सेवार्थ प्रभु सर्वसाधारणकेलिये प्रकट नहीं होवे हैं.

सेवकके घरमें सेव्यको प्राकट्य:

याके बाद श्रीलालूभट्टजी एक और बहुत सुन्दर बात यहां समझा रहे हैं के ठाकुरजी प्रकटे वसुदेवजीके कारागृहमें और वसुदेवजी उनकु पधराके ले गये नन्दरायजीके घरह्वये लीला है. प्रभुके प्रकट होनेके बाद वसुदेवजीकी बेड़ीयां टूट गईं. पहरेदार जो कृष्णकु मारनो चाहते हते वो मारवेके बजाय खुद ही सो गये. वसुदेवजी कृष्णकु नन्दरायजीके वहां ले गये और वहां पधरा दिये.

कृष्ण पधारे, माया बिदा भई:

या प्राकट्यलीलामें एक बड़ी मजेदार घटना घटी हती. ठाकुरजीके प्राकट्यके साथ-साथ माया भी प्रकटी हती. वो नन्दरायजीके वहां प्रकटी हती. वसुदेवजी वा मायाकु ठाकुरजीकी एवजमें (बदलामां) लेके आये. श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के सेवामें भी ऐसी ही कोई घटना घट रही है. ध्यानसुं देखो तो तुम्हारो गुरु जो श्रीठाकुरजीकु पुष्ट करके तुम्हारे घरमें पधरा रह्यो है वो वसुदेवजीके जैसो है और तुम नन्दरायजीके जैसे हो. गुरुने जब ठाकुरजीकु तुम्हारे घरमें पधराये तब तुम्हारो घर गोकुल हो गयो. तुम्हारो परिवार नन्दरायजीके परिवार जैसो हो गयो. और अहन्ता-ममतावाली जो माया है वो गुरुने जा बखत तुमकु ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा दी तब वा मायाकु गुरु पधरा गयो. अब तुम्हारो सम्बन्ध वा सांसारिक अहन्ता-ममतावालो नहीं रहके भक्तिवालो हो गयो. यदि अहन्ता भी है तो वो कृष्णके सम्बन्धवाली अहन्ता है के ''मैं कृष्णको हूं''. यदि ममता भी है तो ''कृष्ण मेरो है'' और ''ये हमारे कृष्ण हैं'' वा तरहकी ममता है.

अहन्ता-ममता:

अहन्ता अपनी कई तरहकी हो सके है. जैसे मैं यों मानुं के मैं देहमात्र हूं. यदि ऐसे मानुं तो ऐसी

शारीरिक अहन्ता तो जानवरकी भी हो सके है. ऐसी अहन्ता गधा और कुत्ता कु भी होवे है; चूहा और बिल्ली कु भी होवे है. अपने शरीरकु खुद मानवेके अलावा, एक बात ध्यानसु देखो के, ये जानवर अपने देहके अलावा भी अपनी अहन्ता जानते होवे हैं. जैसे कुत्ताकु अहन्ता सिर्फ इतनी ही नहीं होवे है के वो केवल एक शरीर है. वाकु ऐसी भी अहन्ता होवे है के वो 'कुत्ता' (जातिको प्राणी) है. यदि ऐसी अहन्ता वाकी नहीं होवे तो कुत्ता क्यों कुत्ताके साथ ही फिरते होवे हैं? घोड़ाके साथ क्यों नहीं फिरे है? ऐसे ही घोड़ा घोड़ाके साथ ही क्यों फिरे है? गधाके साथ क्यों नहीं फिरे है? गाय गायके साथ ही क्यों फिरे है? ... समझमें आयो न तो जिनकु अपन जानवर कहे हैं, जिनकु अपन बेअक्ल कहे हैं उनकु भी इतनी समझ तो होवे है के वो कौनसी जातीके हैं. माने (अर्थात्) शरीरसुं तो बात आगे गई न शरीर तक तो सीमित नहीं रही.

अहन्ताको विस्तार:

गाय घोड़ा गधा चूहा की बात जाने दो, चींटीकी तो खोपड़ी कितनी छोटी होवे है, इतनी छोटीसी खोपड़ीमें भी वाकी अहन्ता बराबर काम करे है. चींटीकु या चेंटाकु यदि शक्करको डला मिल जाय तो वो अकेले नहीं खायेंगे, अपनी सारी जमातकु इकट्ठी करके लायेंगे के मिल गयो मिल गयो मिल गयो है के नहीं, गलत तो नहीं कह रह्यो हूं न तो देखो इतने छोटे प्राणीकी भी अहन्ता वाके शरीर तक सीमित नहीं है. करके (या लिये) अपने यहां यों मान्यो गयो है के जा व्यक्तिकी अहन्ता इतनी क्षुद्र होवे के अपने शरीर मात्रमें सीमित है तब तो वो जानवरसु भी गयो-गुजरो आदमी है.

अपनकु भगवान्ने बुद्धि दी है. वा बुद्धिके कारण अपनी अहन्ता अनेक रङ्ग एक्वायर् करे है. जैसेह्व मैं मनुष्य हूं, पिता हूं, पतवी हूं, पुत्र हूं, भाई हूं, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य हूं, भारतीय हूं, एशियन हूं वगैरह-वगैरह.

लोकसिद्ध-शास्त्रसिद्ध अहन्ता:

इन सारी एक्वायर्ड् अहन्तानकु श्रीमहाप्रभुजी दो तरहसुं बांटे हैं. अपनी कितनीक अहन्ताएं शास्त्रीय संस्कारके कारण पनपती होवे हैं. और कितनीक अहन्ताएं लोकसिद्ध होवे हैं. जैसे मैं अपने आपकु यों मानुं के मैं बाप हूं, बेटा हूं, भाई हूं ... ऐसी अहन्ताकेलिये मोकु शास्त्रकी गरज नहीं है. ये सब मेरी लोकसिद्ध अहन्ता हैं. परन्तु जैसे शास्त्र कहे है के तुम क्योंकि ब्राह्मण हो अतः तुमकु ब्राह्मणको काम करनो चहिये; क्षत्रियकु ये काम करनो चहिये, वैश्यकु वो काम करनो चहिये. या तरहकी अहन्ता लोकसिद्ध अहन्ता नहीं है. वो तो शास्त्र बता रह्यो है करके वा तरहकी अहन्ता बने है.

अलौकिक अहन्ता:

लोकसिद्ध और शास्त्रसिद्ध सुं ऊपर एक अहन्ता और होवे है जो ब्रह्मसम्बन्ध प्रदान करके श्रीमहाप्रभुजी अपनकु देनो चाहे हैं. और वो अपनी अहन्ता है: ''दासोऽहं'' वाली. ''मैं भगवान्‌को दास हूं, भगवान् मेरो स्वामी है'' ये अहन्ता. ये अहन्ता क्षुद्र अहन्ता नहीं है. अहन्ता होते भये भी ये बहुत अच्छी अहन्ता है. अहन्ताको एक तरहसुं रिफाइन्मेन्ट् हो गयो. जैसे तेलको रिफाइन्मेन्ट् हो जाय तो तेल सुधर जाय. कोई भी चीजकु अपन छान लें तो वो चीज साफ हो जाय. ऐसे समर्पणकी प्रक्रियामें अपनी अहन्ता छनके ''दासोऽहं'' हो जाय है. समर्पणकी प्रक्रियाके छन्नामें छनके अपनी जो अहन्ता हती के ''मैं श्याममनोहर हूं'' के ''मैं बाप हूं, बेटा हूं, भाई हूं'' ... वो अहन्ता प्रभुके प्रति जब अपन समर्पित भये तब छनके वाको सुपर् फाइन् रूप हो गयो. अहन्ता-ममताको वो रूप श्रीमहाप्रभुजी के अनुसार ये है के ''मैं प्रभुको दास हूं, प्रभु मेरो स्वामी है''. प्रभु मेरो स्वामी है, मैं दास हूं. याही तरहसुं, मेरो परिवार भी मेरे प्रभुको दास है, सेवार्थ हैद्धये अपने परिवारके प्रति रही भई ममता एक रिफाइन्ड ममता है. ये ममता भक्तिमें काम आनेवाली ममता है. परन्तु जा बखत मैं ऐसी ममता नहीं रख पा रह्यो हूं वा बखत मेरी भक्ति अच्छो रंग नहीं ले पायेगी. क्यों? एक बात ध्यानसु समझो के भक्ति मूलमें भगवानकु चाहनेकी प्रक्रिया है. ये अपने अनुरागकु बढाते-बढाते भगवान् तक पहूंचावेकी प्रक्रिया है. ये प्रक्रिया विरागकी प्रक्रिया नहीं है. विरागकी प्रक्रिया एक दूसरी प्रक्रिया है. वा प्रक्रियामें अनुरागकु घटाते-घटाते इतनो घटादियो जाय है के सब जगहसुं अपनो अनुराग समाप्त हो जाय है. भक्तिकी प्रक्रिया, परन्तु, कैसी है? अपने अनुरागकु केवल अपने शरीरमें मत रखो, अपने परिवारमें ही मत रखो. वाकु अपने धर्ममें भी रखो. अपने धर्ममें ही मत रखो, अपनी आत्मामें भी रखो. और अपनी आत्मामें ही मत रखो, परमात्मा तक वा अनुरागकु बढाओ. जैसे अपन चादरकु फैलावें ऐसे अपनी अहन्ताकु इतनी फैलाओ के वो प्रभु तक पहुंच जाय. जब प्रभु तक अपनी अहन्ता पहुंच गई ''दासोऽहं'' के रूपमें, जब प्रभु तक अपनी ममता पहुंच गईद्ध ''मैं प्रभुको हूं, प्रभु मेरे हैं, मेरो परिवार प्रभुके सेवार्थ है'' के रूपमें द्धतो अपनी अहन्ता-ममतामें विस्तारके कारण एक तरहको भक्तिको रंग आ गयो. दूसरे दस रंग एक्वायर् कर सकती होयगी, दूसरे दस रंगमें वो रंगी जा सकती होयगी पर बिना भक्ति के अहन्ता-ममता ये रंग एक्वायर् नहीं कर सके है. भक्ति और समर्पण के कारण अपनी अहन्ता-ममता इन रंगन्‌में रंगा जाय है. या बातकु समझो.

अलौकिक अहन्ता-ममता भक्तिमें उपकारक:

जो अहन्ता-ममता इन रंगन्‌में रंगा जाय है वो उपयोगी है और जो इन रंगनमें नहि रंगा रही है

वो अहन्ता-ममता भक्तिमें बाधक है. जैसे, मैं अपने आपकु प्रभुको दास नहीं मान पाउं तो मेरी जो बची भई अहन्ता-ममता है वो भक्तिमें बाधक हैं. मैं अपने परिवारकु भगवत्सेवार्थ नहीं स्वीकार पातो होउं तो परिवारमें मेरी जो ममता है वो भक्तिमें बाधक होयगी. परन्तु यदि मैं अपने परिवारकु भगवत्सेवार्थ स्वीकार लउं, जैसे डोकरीकी वार्तामें एक बहुत सुंदर प्रसङ्ग आवे है के एक डोकरीके दो बालक मर गये. डोकरी रोवे लगी तब कोईने कही के तु रोवे क्यों है? तो वाने कह्यो के ''मेरे ठाकुरजीके दो खिलौना चले गये''. हते तो वाके दो बच्चा ही, पर वाकु ये भाव हतो के इन बच्चान्के रहते मेरे ठाकुरजीको मन लगतो हतो. क्यों के वो भी बच्चा हते और ठाकुरजी भी मेरो बालक है तो बालभावसुं उनके सङ्ग खेलते हते. तो देखो डोकरीको रोनो मोहको रोनो नहीं है, भक्तिको रोनो है. बात वो की वो ही है. बच्चाके मरनेसु रोनो आ रह्यो है, पर एक रोनो सांसारिक है और दूसरो भक्तिको रोनो है. इनमें अन्तर पड़ जाय है.

कृष्णसेवारत हो तो संसारसागरमें भी निर्भय हो:

तो ये जो बात बताई के अहन्ता-ममता जा बखत बढके भगवानकु भी अपने रंगमें रंग ले है तब भगवान् भी भक्तके संसारमें कूद पड़े हैं. श्रीमहाप्रभुजीने ये बात एक बहुत सुन्दर उदाहरणसुं समझाई है के डूबते भये आदमीकु बचायवेकेलिये जो आदमी तैरनो जाने है वो क्या करेगो? क्या वो रस्सी फेंकेगो? हां, जब वाकी ममता डूबनेवालेमें कम होयगी तब. मानलो के वाको बेटा ही डूब रह्यो होवे तो रस्सी फेंकके वाकु बचायवेकी धीरज बापकु रहेगी? बाप खुद कूद पड़ेगो. ऐसे ही भक्त जब अपनी अहन्ता-ममताके मोहके सागरमें डूब रह्यो होवे है वा बखत भगवान् स्वयं भी कूदके आवे हैं के भई अहन्ता-ममताके मोहके सागरमें तु डूब रह्यो है चल, मैं भी आ गयो. आजसुं मैं तोकु अपनो सेवक मानूंगो. आजसुं तेरे परिवारकु मैं अपनो सेवक मानुंगो. तो जैसे बेटा डूबतो होय तब बाप खुद वाकु बचायवेकेलिये तालाबमें कूद पड़े है ऐसे अहन्ता-ममताके मोहके सागरमें डूबते भये भक्तनकुं बचावेकेलिये भगवान् वाके घरमें ठाकुर बनके पधारे है. भगवान् कहे हैं के तु अहन्ता-ममताके मोहके सागरमें डूब रह्यो हतो, अब तोकु बचायवेकेलिये मैं खुद आ गयो हूं. प्रभु जा बखत अपने अहन्ता-ममतास्पद घर, परिवार, धन इत्यादि सबको उपभोग करवे लग जाय हैं तो वाको मतलब ये भयो के अपनकु बचायवेकेलिये प्रभु अपने अहन्ता-ममताके मोहके सागरमें कूद गये. अब डरवेकी कोई बात नहीं है. अब तो या भवसागरकु पार करवेकी भी जरूरत नहीं है. क्योंके प्रभुके सङ्ग जब अपन या सागरकी लहरन्को मजा ले रहे हैं फिर यामें डूबवेको कोई भय नहीं है.

भगवानने जाकु पकड्यो वो तैर गयो:

श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं:

हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे
ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम्

या अहन्ता-ममताके मोहके सागरमें यदि हरि स्वयं अपने साथ कूद पड़े और अपनकु पकड़ रहे हैं तब तो अपन तैर गये. पर यदि वो अपनकु छोड़ दे हैं तो अपन डूब गये. हरिने जाकु मुक्त कर दिये वो तो डूब गये और हरिने या मोह-मायाके सागरमें जिनकु अपनेसु बांध लिये, खुद भी डूबके, वो तैर गये. क्यों? क्योंके अहन्ता-ममताके मोहकी यदि कोई खराबी है तो इतनी ही है के वाके कारण अपन प्रभुके अभिमुख नहीं हो पावें हैं. ओर दस चीजके अभिमुख होवे हैं, प्रभुके अभिमुख नहीं हो पावें हैं. पर जब प्रभु खुद अपने अभिमुख होके अपनी अहन्ता-ममतामें आ गयो फिर डरनेको कोई विषय रह नहीं जाय है. जैसे जा नावमें नाविक बैठ्या होवे है वामें बैठवेमें डर नहीं रहे है. जा कारमें कुशल ड्राईवर बैठ्यो होवे है वामें बैठवेमें डर नहीं रह जाय है.

मेरे एक परिचित न्युझिलेन्ड गये हते. वो बता रहे हते के वहां समुद्रके जा भागमें शार्क मछली होवें हैं वा भागमें समुद्रके अन्दर यात्रीनकु गोताखोरीको अनुभव करावे हैं. शार्क इतनी खतरनाक मछली होवे है के यदि वो अपनकु काटे, और अपनकु खबर पड़ीके कोईने हाथमें काट्यो और अपन हाथकु देखें और हाथ गायब. इतनो शार्प वो काटती होवे है. ऐसी खतरनाक शार्क मछलीकी कॉलोनी में यात्रीन्कु वो लोग घुमावें. पर यात्रीन्कु वहां ले जानेवाले गाईडकी शार्क मछलीके सङ्ग ऐसी दोस्ती होवे है के वाके साथ जो होवे वाकु शार्क कछु भी नहीं करे है. अपने आस-पास भी घूम रही हैं अहन्ता-ममताकी शार्कें, पर वो सब अपने गाईड, भगवानसु हिली भई (मित्रभाव वाली) हैं. वो अपने आस-पास भी होवें तब भी अपनकु हानी नहीं पहुंचा सकें हैं. क्योंके अपन भगवानके साथ हैं. ये बात खास समझनी चहिये.

अहन्ता-ममताकु तोड़ो मत; प्रभुके सङ्ग जोड़ो:

श्रीमहाप्रभुजी समझावे हैं के सेवाको पूरो प्रकार अपनी अहन्ता-ममताकु प्रभुके सङ्ग जोड़वेको प्रकार है, उनकु तोड़वेको प्रकार नहीं है. क्यों? क्योंके पुष्टिभक्त अहन्ता-ममतसु डरतो नहीं होवे है. अहन्ता-ममतासु डरे कौन? वो के जो वाकु हिला नहीं पायो होवे. शेरसु कौन डरे? जाने शेरकु हिलायो नहीं होवे. मोकु बचपनमें एक कुत्ताने काट खायो. वाको डर मोकु आज भी सतावे है. बम्बईमें मेरे एक परिचितके घर मैं गयो. उनके घरमें बहुत बड़ो कुत्ता हतो. वाकु देखते ही मोकु डर लगने लग्यो. मैनें उनसु कही के आप जरा अपने कुत्ताकु बांध दो. उनके यहां छोटोसो एक बच्चा हतो. वाने

मोकु कही के कुत्ताकु तो दांत ही नहीं है. वाने कुत्ताको मुंह खोलके बता दियो. मैनें वासु कही के दांत होवे के नहीं पर मोकु तो कुत्ताकु देखते ही डर लगे है. तो देखो, अपन यदि हिला नहीं पाये होवें तो दांत बिनाके कुत्तासु भी डर लगे है. और हिला पाओ तो शेरसु भी डर नहीं लगेगो. सरकसवाले शेरसु कहां डरे हैं. बिचारे शेर रिंगमास्टरसुं डरते होवे हैं. अपनो प्रभु यदि अहन्ता-ममताके सरकसमें रिंगमास्टर हो जाय फिर घबड़ानेकी कोई बात नहीं रहे है. सब अपने अनुकूल हो जायगो. अपन मजेसु सबको आनन्द ले पायेंगे. ये पद्धति श्रीमहाप्रभुजी अपनकु सिखा रहे हैं. अहन्ता-ममताकु तोड़वेकी नहीं, अहन्ता-ममताकु जोड़वेकी बता रहे हैं. जासु कि अपनी अहन्ता-ममता भक्तिको रूप प्राप्त कर ले. अपनी भक्तिमें वो बाधक न होवे.

भटको मत, अपने कृष्णकु सम्हालो:

या बातकु समझावेकेलिये श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के एक दिन नन्दरायजीकु वसुदेवजीसुं मिलवेकी इच्छा भई. वसुदेवजी सम्बन्धमें उनके भाई हते. दोनोनकी मां अलग हती. कंसकु कर भी चुकानो हतो. जब कंसकु कर चुकाके वसुदेवजीसुं मिलने गये वा बखत वसुदेवजीने नन्दरायजीकु एक बड़ी अच्छी बात कही. उनने कही के तुम मेरे यहां ज्यादा मत आओ. तुम गोकुलमें ही रहो. क्योंके यदि तुम गोकुलमें अपने कृष्णकु नहीं सम्हालोगे तो बड़ी-बड़ी तकलीफें आनेकी सम्भावनाएं हैं. तुम मोसुं मिल लिये. अपनी राम-राम हो गई. अब तुम जल्दी गोकुल जाओ. ''नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले'' यों वसुदेवजीने कही.

पुष्टिमार्गीय गुरुन्को भी ये कर्तव्य है के वे वैष्णवन्कु समझावें के तुम हमारे आस-पास ज्यादा चक्कर मत काटो. हमने तुमकु ठाकुरजी पधराये हैं उनकी सेवामें तुम तत्पर बनो. वाकी सेवामें तुम तत्पर नहीं होगे तो वहां कुछ उत्पात होवेकी सम्भावना है. तुम कहोगे के गुरुने अपनकु ठाकुरजी पधरा दिये हैं या लिये हम तो गुरुके ही चक्कर काटते रहेंगे. पर भाई एक बात सोचो. सुसरने अपनकु औरत पधरा दी. अपन कहेंगे के आपने बड़ो उपकार कियो के इतनी अच्छी औरत हमकु पधरा दी. अब औरतकु छोड़के अपन सुसरके चक्कर काटवे लग गये. ये भी कोई बातमें बात है सुसर भी दु:खी, औरत भी दु:खी और तुम भी दु:खी. सुसरने बड़ो उपकार कियो के अपनी बेटी तुमकु पधरा दी. पर औरतकु छोड़के सुसरके चक्कर अपन नहीं काट सके हैं. ऐसे ही, जब गुरुने तुमकु ठाकुजी पधरा दिये हैं तब ठाकुरजीकु छोड़के तुमकु गुरुके चक्कर लगावेकी जरूरत नहीं है ये बात श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं.

''नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले'' यों जैसे वसुदेवजीने नन्दरायजीकु ये बात समझा दी के अपन बहुत दिनसुं नहीं मिले हते, अब मिल लिये, अच्छो भयो, अब पाछे गोकुल जाओ. जा के तुम अपने बालककी संभाल रखो. ऐसे प्रत्येक पुष्टिमार्गीय गुरुको भी ये कर्तव्य है के वो जाकु ब्रह्मसम्बन्ध देवे वाकु ठाकुरजी पधारा दे, बिलकुल वैसे ही जैसे वसुदेवजीने नन्दरायजीके वहां ठाकुरजी पधराये. और नन्दरायजी वसुदेवजीके चक्कर काटवे लगे तो वसुदेवजीने नन्दरायजीकु जैसे समझायो वैसे गुरु भी अपने शिष्यकु अपने चक्कर नहीं काटवेकु समझावे. शिष्यकु समझावे के वाकु गुरुकु नहीं, ठाकुरजीकु सम्हालनो है. ये बात आज न वैष्णव समझनो चाहे हैं और न गुरु समझानो चाहे हैं. शिष्यन्की ये दशा है के पतवीकी सम्हाल रखवेके स्थानपे सुसरके चक्कर काटवेवाले जमाईकी तरह अपने ठाकुरजीकी सेवा छोड़-छोड़के गुरुके चक्कर काटवेमेंसुं ही ऊंचे नहीं आवे हैं. और आजके गुरु भी ये ही चाहे हैं के शिष्य अपने घरके ठाकुरजीकी सेवा करे के न करे हमारे यहां तो नियमित पहले आवे. ये बात मैं कहतो होउं तो मैं गुनहगार हूं, श्रीलालूभट्टजी प्रमेयरत्नार्णव ग्रन्थमें साफ कह रहे हैं:

'' यथा ''नेहस्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले'' इत्यनेन प्रादुर्भूत-भगवत्सुखानुभव-प्रतिबन्धकज्ञाने वसुदेवस्य कारणता एवम् अत्रापि गुरोः सकाशाद् भक्तिमार्गप्रतिबन्धकज्ञानम्''.

कितनी मीठी पङ्क्ति श्रीलालूभट्टजीने कही है पर गुरुकु आज ये बात कहवेमें घबड़ाहट होवे है के यदि कहेंगे और सब चेलाएं भग जायेंगे तो क्या होयगो.

एक वैष्णव कोई हवेलीमें गयो. हवेलीमें वहांके महाराजश्रीको चित्र बिक रह्यो हतो. वहां श्रीठाकुरजीको भी चित्र हतो. वाने महाराजश्रीके चित्रके साथ श्रीठाकुरजीको चित्रभी हवेलीके अधिकारीसुं मांग्यो. वाने गुरुको चित्र दियो पर श्रीठाकुरजीको चित्र देवेकी साफ ना करदी. वैष्णवने कारण पूछ्यो तो वाने कह्यो के श्रीठाकुरजीको चित्र तुमकु दे देवें फिर तुम घरमें ही दर्शन करलो, हवेलीमें आओ ही नहीं तो अधिकारी जाने है के यदि ठाकुरजीको चित्र दे देंगे तो बिज़नेस् लोस्में जायगो. तो सोचो, कैसो षडयन्त्रको जाल बिछायो गयो है. वा जालमें अपन फंस रहे हैं. और वो शार्के अपनकु कच्चो खा जारही हैं. श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं: ''यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ कथञ्चन, तदा कालप्रवाहस्था देहचित्तादयोप्युत, सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मानिति मतिर्मम''. काल अपनकु खा जाय ऐसो सरंजाम अपनने खडो कियो है. और वो खावेको सरंजाम वैष्णव भी खडो कर रह्यो है. परन्तु जो बात श्रीलालूभट्टजी अपनकु यहां समझा रहे हैं वो ये है के जैसे वसुदेवजीने नन्दरायजीकु बेबाक ये सूचना देदी के अपन

मिल लिये, अब तुम गोकुल जाके अपने कृष्णकु सम्हालो. ऐसे हर गुरुको ये पवित्र कर्तव्य है के वो अपने शिष्यकु ये समझावे के जो ठाकुर मैने तुमकु पधरायो है वाकी सेवामें तुम सावधान अधिक रहो. पर आज यासुं उलटो हो रह्यो है. गुरु चाहे हैं के शिष्य वाके ही चक्कर काटतो रहे. यासुं, समझो के कुछ गड़बड़ है. यदि कोई सुसर ये चाहे के वाको जमाई वाकी बेटीकी सुख-सुविधाको विचार छोड़के सुसरके चक्कर काटतो रहे तो समझोके सुसरके अपनी बेटीके प्रति वात्सल्यमें कछु गड़बड़ है. जाकु अपनी पुत्रीपे शुद्ध वात्सल्य होयगो वो कभी भी ऐसो नहीं सोच सके है. ऐसे ही जाने श्रीठाकुरजी पुष्ट किये हैं वा गुरुकी सम्पूर्ण निष्ठा यदि ऐसी है के मैने ठाकुरजी पुष्ट करके शिष्यके घर पधराये हैं, अर्थात् मैने ठाकुरजीकु प्रकट किये हैं, तो ऐसे ठाकुरजीके सुखको ध्यान रखनो आवश्यक है के गुरुकु खुदके सुखको विचार करनो आवश्यक है? या बातकु ससुर-जमाईके दृष्टान्तके साथ गम्भीरतासुं मिलाके सोचो के जा लाड़कीकु मैने पाल-पोसके बड़ी करी. जाकु मैने अपने दिलको टुकड़ा समझ्यो. जाको योग्य पतिके सङ्ग मैने ब्याह कियो. अब वो दुष्ट जमाई मेरी बेटीको ध्यान नहीं धरके मेरो ध्यान धर रह्यो है तब वाने जो ब्याह कियो हतो वो तो नाटक ही भयो न ऐसे गुरुकु भी ये अहसास होनो चहिये के जा बखत मैने श्रीठाकुरजी पधराये तब वैष्णवको ये कर्तव्य है के वो अपने ठाकुरजीको ध्यान धरे. श्रीमहाप्रभुजी या बातको कितनो ध्यान रखते हते के यदि उनके शिष्यके कोई श्रीठाकुरजीकु थोड़ोसो भी परिश्रम पड़तो तो ‘ ‘ तु कैसे सेवा कर रह्यो है’’ ऐसे पूछ-पूछके पता लगाते. ससुराल भेजवेके पीछे मां-बाप कभी-कभी लड़कीकु बुलाके भी वासु पूछ-ताछ करते होवें हैं के वाकु कोई तकलीफ तो नहीं है, सास ठीक तरहसुं व्यवहार तो करे है, जिठानी ठीक तो रखे है, ननद झगड़ा तो नहीं करे है ... ऐसे अपनी बेटीके सुख-दुःख जानवेकी जैसी जिज्ञासा मां-बापकी होवे है ऐसे गुरुकु ये जिज्ञासा होनी चहिये के जो श्रीठाकुरजी वाने शिष्यके घर पधराये हैं उनकी सेवा तुम ढंगसुं कर रहे हो के नहीं, तुम्हारी पत्नी, भाई, बेटा सेवा बराबर करे हैं के नहीं. यदि नहीं करते होवें तो उनकु वो समझावे. अर्थात् जा परिवारके माथे वाने ठाकुरजी पधराये हैं वो परिवार मिलझुलके सेवा करे हैं के नहीं ये देखनो और यदि नहीं कर पातो होय तो वाके कारण समझके उनको समाधान करनो ये गुरुको कर्तव्य है. गुरुको कर्तव्य ये नहीं है के सब मेरे ही पासे आते रहो. मेरे ठाकुरजीकी सेवा करते रहो, मेरी समृद्धि बढाते रहो. ऐसो कर्तव्य पुष्टिमार्गीय गुरुको नहीं हो सके है.

श्रीलालूभट्टजी यहां समझा रहे हैं के श्रीकृष्णके लालन-पालनमें आते प्रतिबन्धनको ज्ञान जैसे वसुदेवजीसुं नन्दरायजीकु भयो ऐसे मैं जो प्रभुसेवा करवे जा रह्यो हूं वा सेवामें क्या-क्या प्रतिबन्ध आ सके हैं उन प्रतिबन्धनकु समझवेकेलिये सेवाकर्ताकु अपने गुरुके पास जानो होवे तो भले जावे. अन्यथा वाकु गुरुके पासे जावेकी कोई आवश्यकता नहीं है ये बात श्रीलालूभट्टजी यहां बता रहे हैं. ये बात कोई

श्याम मनोहरजी नहीं समझा रह्यो है. मैं तो जो लिख्यो है वाको केवल अनुवाद कर रह्यो हूं. परन्तु ये बात ही कुछ ऐसी है के याकु सुनके सबन्कु मिर्चि लगे है जाकु कहदो वो सुनके गुस्सा हो जाय है

एकने तो मोकु ये कह्यो के तुम कितने मूर्ख हो के जा डालीपे बैठे हो वाकु ही काट रहे हो. मैने कही के मैं जा डालपे बैठ्यो हूं वा डालके जगह-जगह बीज बो रह्यो हूं. मैं श्रीमहाप्रभुजीकी उगाई भई पुष्टिभक्तिके वृक्षकी डालपे बैठ्यो भयो हूं. वो डाल सब पुष्टिमार्गीन्कु मिले वाकेलिये बीज बो रह्यो हूं. वो कहवे लगे के ''तुम्हारे यहां वैष्णव आयेंगे ही नहीं. तुम भूखे मर जाओगे''. वैष्णव अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीकी सेवा करे वामें गुरु भूखो क्यों मर जायगो? ये बात समझमें नहीं आवे है. क्यों भूखो मर जायगो?

भूखे मरनेको एक कारण हो सके है. भूख एक ऐसी चीज है के जाकु जितनी बढाओ उतनी बढ सके है और जितनी घटाओ उतनी घट सके है. जैसे आप आज यदि चार रोटी खाते होगे. एक प्रयोग करो, थोड़े दिन आप दो ही रोटी खाते रहो. थोड़े दिन तक आपकु सन्तोष नहीं होयगो. पर महीना भर आप दो ही रोटी खाते रहोगे तो दो रोटीसुं आपको पेट भर जायगो. कोई दिन आपने स्वादसुं चार रोटी खाली तो आपको पेट भारी हो जायगो. तो समझो के हम लोगनने हमारी भूख बढाली है करके (यालिये) हमकु आज ऐसो लग रह्यो है के हम भूखे मर जायेंगे. पर यदि भूखकु बढावें नहीं तो क्यों भूखे मर जायेंगे

मैने एक पुस्तक लिखी है वामें शिष्यनसुं भेंट लेवेके ३६ प्रकार महाराजन्ने बना रखे हैं वाको विस्तारसुं निरूपण कियो है. वामें खुदकी भेंट, खुदके ठाकुरजीकी भेंट, खुदके नौकरन्की भेंट, खुद गाय पालें वाकी भेंट, जन्मदिनकी भेंट, मरवेकी भेंट, शादीकी भेंट, फूलघरकी भेंट, पानघरकी भेंट, दूधघरकी भेंट ... ऐसी अनेक भेंटन्को विवरण दियो है. अन्तमें मैने लिख्यो है के हम पिशाब जावेकी और संडास करवे जावेकी भेंट नहीं लेवें हैं ये हमारो कितनो बड़ो वैराग्य है सोचो के इतनी सारी भेंट जब हम ले रहे हैं तो भूखे क्यों मर जायेंगे? और इतनी सब भेंट ले रहे हो तो कमसुं कम अपने ठाकुरजीकी भेंट तो मत लो अपने ठाकुरजीकी सेवा तो तुम अपनी गुरुभेंटसुं करो. वैष्णव खुदके ठाकुरजीकी सेवा खुद करेगो. वासु तुम अपने ठाकुरजीकी सेवाकी भेंट क्यों लो हो? मतलब के तुमने अपनी भूख बढाली है. भूख बढाली है करके तकलीफ हो रही है. बाकी इतनी भूख कभी भी स्वाभाविक नहीं हो सके है. या बातकु शान्तिसुं समझोगे तो सबकु समझमें आयगो.

कई लोग कहे हैं के सम्पत्तिके कारण मैं ऐसी बात कर रह्यो हूं. पर भाई यामें सम्पत्ति या विपत्ति को ईश्यु नहीं है. यहां बात श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्त की है. हर व्यक्ति के जाने प्रभुकु आत्मसमर्पण कियो है वाकु अपने माथे बिराजते ठाकुरजीकी सेवा जैसे नन्द-यशोदाने अपने कृष्ण कन्हैयाको लालन-पालन कियो हतो ऐसे अपने घरमें अपने तन-मन-धनसुं करनी है. पर जैसे आज गुरु शिष्यके माथे श्रीठाकुरजी शुद्ध वात्सल्य भावसुं नहीं पधरा रह्यो है वैसे ही सेवाकर्ता वैष्णव भी अपने सेव्यप्रभुमें दृढ आसक्तिवालो नहीं रह गयो है. साक्षात् श्रीकृष्ण तुम्हारे घरमें बिराज रह्यो है फिर भी वामें तुम्हारी दृढतर श्रद्धा क्यों नहीं है. कारण बताओ. क्या वामें वोल्टेज की कमी है? तुम्हारे घरमें बिराजतो ठाकुर क्या पचास वोल्टको लट्टु (बल्ब) है और हवेली-मन्दिरन्में बिराजतो ठाकुर क्या ढाईसो वोल्टको लट्टु है एक बात ध्यानसुं समझो के यदि तुमकु तुम्हारो ठाकुर पचास वोल्टको लगे है तो वालिये क्योंके तुम्हारो भाव वहां पचास वोल्टको है. जा दिन तुम्हारो भाव अपने ठाकुरपे ढाईसो वोल्टको हो जायगो वा दिन वो ठाकुर भी ढाइसो वोल्टको हो जायगो. तुम अपने ठाकुरकु पचास वोल्टको मान रहे हो, मतलब तुम्हारे भावको वोल्टेज कम है, ठाकुरजीको वोल्टेज कम नहीं है या बातकु दृढतर समझो. अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकु अपनो सर्वस्व मानो. जा तरहसुं श्रीमहाप्रभुजी कहते हते के ''मैं तोकों अपनो सर्वस्व पधराय रह्यो हूं. इनकु अपनो सर्वस्व करी जानीयो''. मैं अपनो सर्वस्व तुमकु सोंप रह्यो हूं और तुम इनकु अपनो सर्वस्व मानीयोह्व यदि ऐसो भाव तुमकु अपने सेव्यप्रभुमें है तो तुम्हारी अहन्ता, तुम्हारी ममता, तुम्हारो संसारको बन्धन, तुम्हारे संसारके या भवसागरमें तुम्हारो ठाकुर तुम्हारे साथ तैरतो मिलेगो. कोई भयकी बात नहीं है, कोई डरनेकी बात नहीं है, या संसारमें विरागकी कोई बात नहीं है. सारी बात अनुरागकी हो जायगी. वा तरहको अनुराग जा तरहको अनुराग श्रीगुसांईजी और श्रीनवनीतप्रियजी की वार्तामें प्रगट भयो है. एक दिन सेवामें कछु गड़बड़ हो गई और गुसांईजीने श्रीगिरिधरजीसुं कही के ''सेवामें ऐसी गड़बड़ हो गई, अब मैं घर छोड़के जा रह्यो हूं''. ये सुनके श्रीनवनीतप्रियजीने श्रीगिरधरजीकु आज्ञा करी के ''लो मेरो तनिया (बच्चाको लंगोट) भी भगवा रङ्गमें रङ्ग दीजो''. जब श्रीठाकुरजीकी लंगोट भी श्रीगुसांईजीके वस्त्रके सङ्ग भगवा रंगमें सूखती भई देखी तो गुसांईजीने श्रीगिरिधरजीसुं पूछी के ''भई ये क्या है?'' तो श्रीगिरिधरजीने कही के ''घरमें ठाकुर बिराज रह्यो है और आप वैराग्य ले रहे हो तो ठाकुरकु भी वैराग्य आ रह्यो है''. श्रीगुसांईजीने कही ''अब वैराग्य नहीं आयगो''. जा घरमें ठाकुर बिराज रह्यो होवे वा घरमें वैराग्य आ कैसे सके है? ऐसे घरमें तो परमानुराग होनो चहिये. शर्त परन्तु अपनी केवल इतनी है के जा घरमें परमानुराग है वो प्रभुकेन्द्रीत होनो चहिये. प्रभु वा अनुरागकी धुरी होनी चहिये. जैसे धुरीपे पैया गोल घूमतो होवे है ऐसे भगवद् अनुरागकी धुरीपे अपनो अपने परिवारको अनुराग घूमतो होय तो भक्ति सिद्ध हो गई. और जब भगवत्सक्नेहकी धुरीपे अपनो पारिवारीक अनुराग नहीं घूम रह्यो है तो वो संसार है. भक्ति और सांसारिकता में केवल

इतनो ही अन्तर है के सांसारिकता दोंनोमें समान है पर एक जगह केवल अपनी अहन्ता-ममताकी धुरीपे अपने पारिवारिक अनुरागके पैया घूम रहे हैं. और दूसरी जगह भगवदनुरागकी धुरीपे, भगवान्के प्रति अपने समर्पणकी धुरीपे अपने पारिवारीक अनुरागके पैया घूम रहे हैं. इतनीसी बात अपने पुष्टिभक्तिमार्गकी है. बात बहुत छोटीसी है, बात बहुत सीधीसी है. पर छोटी भी सीधी रेखा खींचनो बहुत टेढ़ी खीर है. टेढ़ी-मेढ़ी रेखा बहुत जल्दीसु खेंची जा सके पर सीधी रेखा खींचनो बहुत मुश्किल काम है. पर बातकु समझें तो यासु ज्यादा सरल बात ओर क्या हो सके है

अपने ठाकुरजीकु संभालो ठाकुरजी अविद्याकु संभाललेगें :

आगे श्रीलालूभट्टजी एक बहुत सुन्दर बात बता रहे हैं के ' ' जब नन्दरायजीकु ये बात पता चली के गोकुलमें उत्पात् हो रहे हैं तो नन्दरायजी घबड़ा गये. नन्दरायजीने झट्-पट् मथुरा छोड़के गोकुल जानेको उपक्रम कियो. वे गोकुल पहुंचे वा बखत पूतना वहां ज़हर पिवावेकेलिये पहुंच गई हती और प्रभुने पूतनाकु मार रखी हती. नन्दरायजी जा बखत पहुंचे तब पूतना उनकु मरी भयी मिली. ऐसे ही श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के जा बखत तुम ऐसी उतावलसुं, ऐसे उद्वेगसुं अपने ठाकुरजीकी संभाल लेने जाओगे तो तुम्हारे घरकी अविद्या, मतलब अज्ञान, कु प्रभु खुद दूर करेंगे. ये देखो, बहुत बड़ी बात श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं.

तुम्हारे भीतर रही भई पूतनाकु पहचानो :

मैं मन्दिरमें जन्म्यो हुं. मन्दिरमें मेरो पालन-पोषण भयो है. और जीवनके आधेसुं ज्यादा वर्ष मैने मन्दिरमें काटे हैं यालिये मैं अपने अनुभवकी बात आपकु बता रह्यो हूं. मन्दिरन्में होती बड़ी ऊचे किस्मकी सजावट, ऊंचे किस्मकी सेवा, बड़े पोम्प एन्ड शॉ (प्रदर्शन) को सारो प्रकार कैसे निभ रह्यो है या बातपे आप लोगन्ने कभी ध्यान नहीं दियो है. (वो सब सेवा और परिचर्या) महाराज खुद नहीं कर रह्यो है. फूलमण्डली महाराज खुद नहीं भर रह्यो है, वैष्णव भर रह्यो है. बड़े-बड़े अन्नकूट, बड़े-बड़े छप्पनभोग महाराज वाके पाकिट्मेंसुं पैसा नहीं निकाल रह्यो है. वैष्णवसुं पैसा ऐंठके धर रह्यो है. आप विचार करो के वैष्णव यदि महाराजके वहां फूलमण्डली-हींडोराकी सजावट करे है तो खुदके घरमें क्यों नहीं कर सके है? वो यदि खुदके घरमें करे तो वहां भी सजावट हो सके है. वैष्णव जो पैसा महाराजके ठाकुरजीकी सेवाकेलिये खर्च कर रह्यो है वो ही पैसासुं वो अपने ठाकुरजीकी सेवाको वैभव क्यों नहीं बढा सके है? (अवश्य बढा सके है. परन्तु ये दु:खकी बात है के सर्वत्र) एक भ्रम पैदा हो गयो है के अपने माथे बिराजतो ठाकुर कम है और इन मन्दिरन्में बिराजतो ठाकुर बहुत बड़े वोल्टेजको है. ' ' घरको जोगी जोगिया, परगामको सिद्ध'' करके (या करणसुं) वैष्णवकी पुष्टिभक्ति चहिये वैसो रंग ले नहीं पावे

है. करके श्रीलालूभट्टजीकी पंक्तिके आधारपे मैं आपकु ये बात बता रह्यो हूं के जिनके वहां ठाकुर बिराज रह्यो है वा हर वैष्णवके घरमें वाके ठाकुरकु ज़हर पिवावेकेलिये ऐसी अज्ञानकी पूतना घुस गई है के हमारो ठाकुर छोटो है और मन्दिरन्में बिराजतो ठाकुर बड़ो है. क्योंके वहां सजावट ज्यादा है, वहां वैभव ज्यादा है, वहां अपरस ज्यादा है, वहां सामग्रीको ताम-झाम ज्यादा है, वहां छप्पनभोग हो रहे हैं ... हम इतनो सब कहांसु कर सकें? ह्न(ऐसे-ऐसे विचार-भावन्को सेवाकर्ताके मनमें आनो) ये पूतना है. या पूतनाकु तुम्हारो ठाकुर मार सके है. कब? तब के जब तुम एक बखत अपने ठाकुरकी तरफ दौड़ो. जैसे नन्दरायजीकु वसुदेवजीने ये कही के ''सन्त्युत्पाताश्च गोकुले'' देखो गोकुलमें बड़े उत्पात होवेकी सम्भावना है. तुम दौड़के जाओ, यहां मेरे पास मत बैठो. ऐसे तुम एक बखत, एक बखत या तरहकी दौड़ अपने ठाकुरजीके प्रति लगाओ, बस वो अविद्याकी पूतनाकु तुम्हारो ठाकुरजी ही मारके बता देगो. वाके बाद तुमकु ये अविद्या कभी नहीं सतायगी. एक बखत अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकेलिये वा उमंगसुं दौड़ो जा उमंगसुं तुम मन्दिरन्में दौड़ रहे हो. एक बखत तुम अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी वा उमंगसुं सेवा करो के जा उमंगसुं तुम मन्दिरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवा करवे जाओ हो. एक बखत तुम अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकेलिये वा उमंगसुं पैसा खर्च करो के जा उमंगसुं तुम मन्दिरन्में सजावट-मनोरथनकेलिये पैसा खर्च करो हो. जो सजावटें तुम मन्दिरमें जाके करो हो वो सजावट तुम अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी करो. यदि तुम ऐसो करोगे तो तुम्हारी अविद्याकी पूतनाकु तुम्हारो ठाकुरजी वैसे ही मार देगो जैसे लीलामें कृष्णने पूतनाकु मार दी हती. ये ही बात श्रीलालूभट्टजी यहां आगे कह रहे हैं के ''ततः पूतनामारणम्. सा च अविद्यारूपा''

लीला और गृहसेवा में पूतनावध :

जा बखत वसुदेवजीके समझावेपे नन्दरायजी गोकुलकी तरफ दौड़े वा दरम्यान पूतना भगवान्कु मारवे गोकुलमें आ गयी हती. पर पूतना भगवान्कु मार नहीं सकी हती, भगवान्ने वा पूतनाकु मार दी हती. ऐसे ही तुम जा बखत अपने घरके ठाकुरके प्रति दौड़ोगे तो अपने ठाकुरकु कम मानवेकीह्नन्यून मानवेकी तुम्हारी जो अविद्या है, जो तुम्हारो अज्ञान है वाकु तुम्हारो घरको सेवित ठाकुर स्वयं दूर कर देगो. एक बखत वा उमंगसुं अपने ठाकुरकु देखो. वा उमंगसुं देखोगे तो वो अज्ञान दूर होयगो. वा उमंगसुं नहीं देखोगे तो वो अज्ञान दूर नहीं होयगो. या तरहसु हर वैष्णवके घरमें, हर पुष्टिमार्गीके घरमें एक पूतना मर सके है. पर वाके मरवेकी शर्त ये है के वा घरको जो नन्दराय है वाकु वा उमंगसुं और वा उद्वेगसुं अपने ठाकुरके प्रति दौड़वेकी जरूरत है. यदि वो दौड़ रह्यो है तो वो पूतना मरेगी. वरना वो पूतना तुम्हारे ठाकुरकु मार देगी हों. वो पूतना तुम्हारे (हृदयमें भक्ति-भावके रूपमें बिराजते) ठाकुरकु मार सके है (अर्थात् तम्हारे हृदयको भक्तिभाव नष्ट हो सके है) यदि तुम अपने ठाकुरकु छोडके यहां-

वहां भटकते फिरोगे. (यदि तुम लोगनक्‍ु अपने घरके ठाकुरकी एक निष्ठासुं सेवा नहीं करके यहां-वहां भटकते फिरनो है तब) तो फिर पुष्टि भक्तिकी क्या जरूरत है? तब तो पूजामार्ग ही पर्याप्त हतो भक्तिमार्ग काहेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने प्रकट कियो है? यालिये के अपन अपने घरमें अपने भगवान्‌के साथ अपने जीवनकु जीयें. अपन जगतमें जगदीशकु भूले बीना वा तरहसुं जीयें के अपन न तो जगतके कीचडमें डूब मरें और न जगतकु छोडके वैकुण्ठ जावेकी कोई धांधलमें फंसे. अपन या जगतमें जगदीशके साथ यदि जी सकते होंय तो जगतमें फिर कोई खराबी नहीं है ' ' तावद् रागादय: स्तेनास् तावत् कारागृहं गृहम्, तावन् मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जना:''. जब तक भगवान्‌के चरण नहीं पकड़े हैं तब तक संसार बन्धन है. भगवान्‌के चरण पकड़लिये फिर तो संसार बन्धन क्यों है? ये संसार तो भगवान्‌की सेवा करवेको एक व्यापक अवसर अपनेलिये उपस्थित कर देगो.

श्रीलालूभट्टजी आगे बहुत सुन्दर एक शङ्का कर रहे हैं के पूतना बकासुर इत्यादिकु आप अविद्या, दम्भ, पाखण्ड इत्यादिरूप क्यों मान रहे हो?

एक बात समझो. जैसे अपन सेवा करें वा बखत कछु-न-कछु भावना करते होवे हैं. उदाहरण आपकु बताउं के ठाकुरजीकु जब भोग धरें तब अपन भावना करें हैं के यशोदाजी ठाकुरजीकु मङ्गलभोग धर रही हैं. अपन ठाकुरजीकु राजभोग धरें तब भावना करे हैं के ठाकुरजी जब गाय चरावे जा रहे हैं तब व्रजके गोप-गोपिकाएं छाक लेके जा रहे हैं. अपन जब ठाकुरजीकु गुलालसुं खिलावें वा बखत व्रजके गोप-गोपी श्रीठाकुरजीके संग होरी खेल रहे हैं ऐसी भावना करते होवे हैं. या तरहसुं जैसे भगवत्सेवामें अपन ये सारी भावनाएं करते होवे हैं वैसे लीलमें प्रभुने जा बखत पूतना मारी वा बखत ठाकुरजीने ये भावना करी के ' ' मेरे भक्तन्‌के अज्ञानकु मैं मार रह्यो हूं''. जा बखत ठाकुरजीने बकासुरकु मार्यो वा बखत ठाकुरजीने ये भावना करी के ' ' मेरे भक्तन्‌में रहे भये दम्भके दो चोंचकु मैं चीर दे रह्यो हूं''. जा बखत ठाकुरजीने कालीनाग नाथ्यो वा बखत ठाकुरजीने ये भावना करी के मैं कालीकु यालिये नाथ रह्यो हूं के मेरे भक्तन्‌में रही भई जो विषयासक्ति है उनकु मैं अपने भक्तिके चरणसुं नाच-नाचके, कुचल-कुचलके झहर बिनाके बना दे रह्यो हूं ह्नऐसी-ऐसी भावना ठाकुरजीने करी. तो अपनी भावना जैसे ठाकुरजीके प्रति है ऐसे ठाकुरजीकी भी कछु भावना अपने प्रति हो सके है के नहीं?

भगवत्सेवाके व्यवस्थापक दिवान्ध हैं :

एक सच्ची बात बताउं हूं. मेरे घरमें एक सरस्वतीकी मूर्ति मेरे पास है. एक दिन हमारे बच्चाएं एक प्लास्टिकको उल्लु ले आये. वाकु देखके मेरी वाईफ ने हल्ला मचायो के अरे उल्लु क्या लेके

आये यहां? मैने कह्यो के लाव, याकु सरस्वतीके चरणमें रख दो. उल्लुकु कहां बैठानो? मैने वाकु सरस्वतीकी मूर्तिके चरणमें बैठा दियो. मैनें उल्लुकु बैठा दियो वा पीछेसु मेरे घरमें आ के जो भी वाकु वहां बैठ्यो देखे वो मोकु पूछे के भई उल्लुकु तुमने सरस्वतीके चरणमें क्यों बैठायो है? तो मैं उनके प्रश्नको उत्तर यों दउं हूं के ये उल्लूमें मेरी भावना पुष्टिमार्गीय मन्दिरके ट्रस्टीन्की है. कभी सुधर जायें या भावनासुं मैनें उनकु सरस्वतीके चरणमें बैठा रखे हैं. मेरी भावना है के जा दिन भगवद् इच्छा होयगी वा दिन सुधर जायेंगे. कोई दिन तो ऐसो आयेगो ''वो सुबह कभी तो आयेगी'' के जा दिन इन सब उल्लून्की अक्ल सुधर जायेगी. आज भी वो उल्लू वहां बैठे भये हैं, आप बम्बई आओ तो देखियो.

ये चक्कर क्या है? जो सिद्धान्त घरमें सेवाको हतो वाको ऐसो उपद्रव अपनने क्यों कियो? मन्दिरमें सेवाको प्रकार अपनकु जंच गयो और अपनने शुरु कर दियो, महाप्रभुजीसुं कन्सल्ट् किये बिना के आपको ये सिद्धान्त है के नहीं? अब ऐसे लोगन्को स्थान कहां हो सके है? तो मोकु एक ही स्थान समझमें आयो के उनकु सरस्वतीके चरणमें बैठाओ, शायद सुधर जांय. शुभ भावना रखनी तो बुरी बात नहीं है न? ऐसे ही प्रभुने जब असुरन्को संहार कियो तब प्रभुने ये भावना करी के भक्तमें रहे भये उन-उन दुर्गुणन्कु मैं खत्म कर रह्यो हूं. असुरन्कु खत्म नहीं कर रह्यो हूं. असुरन्कु क्यों खत्म करुं भक्तमें रहे भये दुर्गुणकु खत्म करनो मेरी जिम्मेदारी है, क्योंके भक्तन्के अहन्ता-ममताके मोहसागरमें मैं कूद्यो हुं. भक्तके अहन्ता-ममताके मोहसागरमें तैरते भये जो ये दुर्गुण हैं वो सब असुर हैं. उनकु खत्म करवेकी जिम्मेदारी अब मेरी है. प्रभु कूदे करके (वा कारणसुं) उनकी जिम्मेदारी भयी, उनको उत्तरदायित्व भयो, करके उनने उन असुरन्कु खत्म किये.

यदि अपन अपने माथे बिराजते ठाकुरजीके प्रति तत्पर होवें तो अपने अज्ञानकु प्रभु स्वयं दूर करेंगे. 'अज्ञान' को अर्थ या सन्दर्भमें अहन्ता-ममता समझनो चहिये. मैनें आपकु समझायो हतो के अपने यहां अहन्ता-ममताकु तोड्यो नहीं जाय है*.

अहन्ता – ममता :

(यहां एक खास बात आप लोग समझो के) या देहमें अहन्ता-ममताको विषय बन सके ऐसी सचमुचमें कोई भी चीज नहीं है. वाको कारण समझो, एक सामान्य उदाहरण बताउं हूं. अपन 'अहन्ता' को आधार क्या माने हैं वाको विचार करें. क्या अपन अपनी इन्द्रियन्में अपनी अहन्ता माने हैं? परन्तु ध्यानसु देखोगे तो अपन अपनी इन्द्रियकु 'मम' भी कहते होवे हैं. जैसे ''मेरो हाथ'', ''मेरी आंख'', ''मेरो पैर'', ''मेरी नाक'' ... तो अपनी अहन्ता इन्द्रियन्सुं जुड़ी भई तो है नहीं. ऐसे ही अपन कभी

यों भी नहीं कहे हैं के ' ' मैं आंख हुं'', ' ' मैं नाक हुं'' ... मतलब आंख कान नाक हाथ पैर सुं ' मैं' कछु अलग चीज है. अहन्ता अपनी इन्द्रियन्सुं जुड़ी भई नहीं है.

अपन यों कहें के अहन्ता अपने देहसुं जुड़ी भई वस्तु है. तो ' ' मैं देह हूं'' ऐसे अपन सोचें जो सामान्यतया सारे अनात्मवादीन्को विचार है के देहके अलावा मेरो कुछ है नहीं. पर ध्यानसुं देखो तो पता चलेगो के जैसे अपन देहकु ' मैं' कह रहे हैं ऐसे देहकु ' मेरो' भी कह रहे हैं ' ' मेरो देह'' ' ' मेरो शरीर''. मतलब, बात साफ हो गई के ' मैं' कोई ओर है जाको ये शरीर है. जैसे मैं ' ' मेरो घर'' कहूं, मतलब घर कछु ओर चीज है और मैं कुछ ओर. ऐसे ' ' मेरो शरीर'', ' ' मेरो बेटा'', ' ' मेरी पत्नी'' ' ' मेरो भाई'', ' ' मेरो पिता'' ... ऐसे ' ' मेरो शरीर'' जा बखत मैं कह रह्यो हूं वाको मतलब है के ' मैं' कोई ओर चीज हूं. अब जब या बातकु सोचें तो अपनकु लगे है के शायद आत्माकु अपन् ' मैं' कहते होंगे. पर अपन पाछे ' ' मेरी आत्मा'' ऐसे भी कहते होवे हैं. ' ' मैं आत्मा'' जैसे कह सके हैं ऐसे ही ' ' मेरी आत्मा'' ऐसे भी अपन कह सके हैं. आखिरमें ये एक बहुत बड़ो सवाल पैदा हो जाय है के ' मैं' यानी कोन? सब नदारद है. ' मैं' के सामने ठहरनेवालो कोई एक भी विषय सामने आ ही नहीं रह्यो है. ये लगभग ऐसी स्थिति है के जैसे अपन घरकेलिये सवाल करें के ' घर' माने क्या दरवाजा? दरवाजा तो घरमें ही है. ' घर' माने क्या आंगन? खाली आंगन नोहरान्में होवे है पर नोहराकु अपन् घर नहीं कहेंगे. अब ' घर' माने क्या खिड़की? तो समझो के कोई दीवारमें खाली खिड़की खण्डहरन्में होवे है. वाकु क्या आपन् ' घर' कहेंगे? तो फिर ' घर' माने क्या? कोई भी एक चीजकु पकड़ो तो वो घरके नामपे टिक नहीं सके है. मतलब साफ है के सबके बखड़जन्तरकु अपन् ' घर' कहे हैं. ऐसे ही देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, आत्मा इन सबको जो बखड़जन्तर खड़ो भयो है, अपने या उदाहरणमें, वाको कुछ मिल्यो-झुल्यो नाम ' अहं' है. सचमुचमें या अहंको विषय तो कछु भी नहीं है. जैसे अपने सामने घड़ा होवे तब अपन वाकु निश्चितरूपसुं पहचान सके हैं के ये घड़ा है. जैसे पंखा कोई कहे तो पंखाको ज्ञान होवे है के ये ये पंखा है. ऐसे अहंको भी अपनकु अनुभव तो होवे है पर ' अहं' है कोन? कोई एक चीज वाके सामने खड़ी नहीं रह सके है के भई या ढंगसु ' अहं' कह्यो जा रह्यो है. सबको मिल्यो-जुल्यो एक खीचड़ा है जाकु अपन ' अहं' कह रहे हैं. करके अहं कोई एक तरहको अज्ञान है, या अर्थमें. अज्ञान क्यों है? क्योंके ' अहं'सुं कोई भी चीज जानी तो जा ही नहीं सके है फिर भी अहं को अनुभव तो हो ही रह्यो है. या बातकु आप केलिडोस्कोप् सुं समझ सकोगे. वामें औरतन्के पहनवेकी चूडीयें डालदी जाय हैं. वाकु गोल-गोल घुमाते जायें तो वामें डिज़ाइन् बदलती जाय है. वाकी हकीकत बड़ी नाजुक है. हर क्षण वामें डिज़ाइन् बदल जाय. पर डिज़ाइन् वामें होवे नहीं है. वाकु थोड़ी पैनी आंखसुं देखो तो वामें त्रिकोण बने ऐसी तरहसुं तीन काच जमाये जायें हैं. बीचमें चूड़ीके रंगीन टुकड़ा

डाल दिये जायें हैं. चूडीके टुकडाएं जो भी तरहसुं वामें पड़े होवें वो आसपासके काचन्में प्रतिबिम्बित होके तीन-तीन बखत रिपीट् हो जायें. वाके फलस्वरूप कोई एक डिज़ाइन् बन जाती होय है. यदि आप काचकी तरफ नहीं देखके खाली टुकडान्की तरफ आंख एकदम सन्धान करके देखोगे तो पता चलेगो के वामें कोई डिज़ाइन है ही नहीं, सब बिखराव ही बिखराव है. हर बिखरावकी तीन बखत आवृत्ति होवेसुं एक डिज़ाइन् सी बन जाती होवे है. ऐसे अहं भी अपनी एक डिज़ाइन् है. बाकी अहं के नामपे सब बिखराव ही बिखराव है. सचमुचमें अहंके कोरोस्पोंडिंग् कोई भी डिज़ाइन् नहीं है. पर वा बिखरावकु ऐसे ढंगसुं जोड-पकडके रख्यो है के जासुं या शरीरमें इन्द्रियें भी आ गई हैं, या शरीरमें अन्त:करण भी आ गयो है, आत्मा भी आ गई है, प्राण भी आ गयो है ... करके सारे बिखरावमें एक डिज़ाइन् सी बन जा रही है. जा डिज़ाइन् को नाम अपन 'अहं' सोच रहे हैं. वा केलिडोस्कॉप्में लाखों डिज़ाईन् बन सके हैं ऐसे ही अपने अहंकी भी लाखों डिज़ाइन् बन सके है. मैं बाप हूं, मैं बेटा हूं, ब्राह्मण हूं, क्षत्रिय हूं, हिन्दुस्तानी हूं, पाकिस्तानी हूं, शेठ हूं, गरीब हूं ... नित्य नई डिज़ाइन् बनती चली जावे है. बिलकुल वो केलिडोस्कोप् वालो चक्कर है. वाके सामने कछु है नहीं, चंद टुकडाएं कहीं जमा हो गये हैं, पर डिज़ाइन् एक के पीछे एक बनती चली जा रही है. मतलब, अज्ञान है. ख्यालमें आयो न

अहंकु अपन अज्ञान क्यों कहे हैं? यालिये नहीं के अहंको अपनकु अनुभव नहीं हो रह्यो है. अनुभव तो हो रह्यो है पर वो 'अहं' है काहेको नाम? वो डिज़ाइन् है कहां? वो डिज़ाइन् है नहीं, वो खाली दिखलाई दे रही है. ऐसे 'अहं' अपनकु खाली दिलाई दे रह्यो है. वो डिज़ाइन् जितनी खूबसूरत है उतनो ही अहं भी खूबसूरत है. कोईके भी अहंकु ठेंस पहुंचा दो, महाभारत खड़ी हो जयगी. और खूबसूरती वाकी ये है के 'अहं' नामकी कोई चीज पाछी है नहीं. पैरकु ठेंस पहुंचे तो आदमी इतनो गुस्सा नहीं होवे, हाथकु ठेंस लग जाय तो इतनो गुस्सा नहीं होवे पर अहंकु ठेंस लगे तो दस-दस बीस-बीस साल आदमी याद रखतो होवे है. इतनो गहरो घाव वाकु होवे जब वाके अहंकु ठेंस पहुंचे. तो खूबसूरत कितनी है ये डिज़ाइन् ये देखनेकी बात है. थोड़ोसो भी वाकु छूओ तो दर्द सबसु ज्यादा होवे है. ओर कोईमें इतनो दर्द नहीं होवे है जीतनो दर्द अहंमें होवे है अपनकु.

अहन्ता-ममताकु तोड़ो मत, भगवान्सुं जोड़ो :

तो ये खूबसूरत डिज़ाइन् है. या डिज़ाइन्कु तोडके क्यों देखनो? अपनो सिद्धान्त ये बता रह्यो है के डिज़ाइन् अच्छी दीख रही है तो वाकु भी भगवान्सु जोड़ दो. बुराई क्या है? सच्ची है के खोटी है जैसी है वैसी वाकु भगवान्के साथ जोड़ो. श्रीगुसांईजीने याहीलिये बहुत सुन्दर एक श्लोक विज्ञप्तिमें

कह्यो है :

‘ ‘ यादृशोऽसि हरे कृष्ण तादृशाय नमोऽस्तु ते,
यादृशोऽस्मि हरे कृष्ण तादृशं मां हि पालय’’

बहुत सुन्दर श्लोक है. सेवा करके प्रायः पुराने बड़े लोग ये श्लोक ठाकुरजीके आगे बोलके और फिर बिदा लेते के ‘ ‘ हे कृष्ण तु जैसो है वैसो मेरो नमस्कार स्वीकार कर. और हे कृष्ण मैं जैसो हुं वैसो तेरो हुं. ओर तो मैं क्या कह सकुं पर, ‘ यादृशोऽस्मि’ मेरी डिज़ाइन् जो भी कछु होवे पर ये तेरेसु जुड़ी रहनी चहिये. ये डिज़ाइन् सच्ची है के खोटी है, जैसी है ‘ यादृशोऽस्मि’ जैसो मैं हूं वैसो तेरेसु जुड्यो रहुं. ये जोड़वेकी बात अपने यहां कही गई है.

ब्रह्मसम्बन्ध लेके प्रभुसुं छल मत करो :

गुरु आपकु ब्रह्मसम्बन्ध दे देवे है. ब्रह्मसम्बन्ध देके ठाकुरजी पधरा दे है. ठाकुरजी पधराके सेवा बता देगो. परन्तु सेवा जब आप करोगे तब ये डिज़ाइन् प्रभुसुं जुड़ेगी. और यदि आपने सेवा नहीं करी तब तो सब कछु बातकी बात ही रह गई. प्रभुके संग तुम्हारी काया और मन को सम्पर्क नहीं भयो, वाणीको केवल सम्पर्क भयो. जैसे दुकानन्में लिख्यो होवे है ‘ ‘ आज नकद् कल उधार’’ अपन कल वा भरोसे जायें के भई ‘ ‘ कल उधार’’ लिख्यो भयो है तो चलो कल जायेंगे, आज नहीं जायें. तो कल भी पाछो वोही लिख्यो भयो मिलेगो के ‘ ‘ आज नगद् कल उधार’’. वो कल कभी आवे ही नहीं है. क्योंके दुकानपे तो पाटीया ही लगा रख्यो है के ‘ ‘ आज नगद् कल उधार’’. वो पाटीया पाछो कल बदल्यो नहीं जाय है. आजकेलिये जो कल होवे है वो कल जावें तब पाछी आज हो जाती होवे है. अपनी स्थिति भी ऐसी ही है. अपन भी प्रभुकु ऐसे ही कह देवे हैं : ‘ ‘ आज नगद् कल उधार’’. ब्रह्मसम्बन्धके समय तो अपन प्रभुसुं केवल वाणी ही वाणीसुं जुडे हैं. मन तो जुडे नहीं है, तन भी जुडे नहीं है प्रभुके साथ. तो गुरु तो आपके अहंकु प्रभुसुं सिर्फ वाणीसुं जोड़ सके है. आपको तन और आपको मन तो प्रभुसुं आपकी सेवाकी प्रणालीसुं ही जुड़ेगो नहीं तो ‘ ‘ आज नगद् कल उधार’’ वालो चक्कर हो जायगो. ठाकुरजी भी रोज बाट देखते रहेंगे के कब तेरो तन मेरो होवे कब तेरो मन मेरो होवे तो बोले आज नगद् कल उधार या परिस्थितिकु समझो.

अपने सेव्यकु नहीं संभालोगे तो पूतना नहीं मरेगी :

आगे लालूभट्टजी समझा रहे हैं के पूतनाकु वसुदेवजीने नहीं मारी हती वा पूतनाकु स्वयं प्रभुने मारी हती. पूतना कौनसी? अज्ञानकी पूतना. जा पूतनाके कारण अपन अपने आपकु अहं मान रहे हैं. जा अज्ञानकी पूतनाके कारण अपन कोई चीजकु मेरी मान रहे हैं वा पूतनाकु मारेगो कौन? वसुदेव नहीं

मारेगो. वसुदेवजी क्या कर सके हैं? नन्दकु इतनी सूचना दे सके हैं के भई तु अपने गोकुलमें नहीं जायेगो तो कोई तेरे लालाकु ज़हर पिवावे आ सके है. वो ज़हर कौन पिवायेगो? ये अज्ञान, अपनी अहन्ता-ममताको अज्ञान ही अपने लालाकु ज़हर पिवायेगो. और वाकु ज़हर पिवावेसुं बचायगो कौन? वसुदेवजी नहीं बचा सकेगो. वसुदेवजी कछु कर नहीं सके है. और नन्दरायजी भी कैसे बचायेंगे, पूतना तो तब मरे के जब नन्दरायजी गोकुलकी ओर दौड़ें और ठाकुरजीकु पता चले के भई मेरे लिये वो दौड़के आ रहे हैं तब ठाकुरजी वाकु मारें. (ठाकुरजीकी तरफ दौड़वेके बजाय अपन् ठाकुरजीकु छोड़के भागते फिरें और फिर ठाकुरजीसुं कहें के) भई तु संभालियो तेरो काम, मैं तो जा रह्यो हुं. ठाकुरजी मनमें कहेंगे, मैं क्यों पूतनाकु मारुं, रहेवे दो जिंदी. वाकु मारके फायदा क्या? पूतनाकु प्रभु तभी मारेंगे जा बखत नन्दरायजी गोकुलकी तरफ वसुदेवजीके कहवेसुं दौड़ेंगे. यासुं पहले अपनने ये देख्यो के वसुदेवजीके स्थानापन्न (स्थान पे) अपने यहां गुरु होयगो, नन्दके स्थानापन्न अपने यहां ठाकुरजीकी सेवा करवेवालो व्यक्ति है; और गोकुलके स्थानपे हर वैष्णवको घर है. याहीलिये श्रीलालूभट्टजी बहुत सुन्दर कह रहे हैं के वसुदेवजीके मुखसुं नन्दने जब ये बात सुनी के गोकुलमें बहुत उत्पात होवेकी शक्यता है तो उनने तुरन्त प्रभुकी शरणागति ली के भगवान् मैं तेरी शरणमें हूं, तु बचा. और वा शरणागतिके कारण प्रभुने पूतनाकु स्वयं मारी.

सेवामें आते प्रतिबन्धन्को शिष्यकु ज्ञान करानो गुरुको कर्तव्य है:

या मार्गमें सेवाकर्ताकु गुरु ये बात बतावे है के वाकु भगवत्सेवामें क्या-क्या प्रतिबन्ध आ सके हैं? जो भी प्रतिबन्ध आयेंगे वो पूतना जैसे ही आयेंगे. सेवाकर्ता उन प्रतिबन्धनूकु अच्छी तरहसुं पहचाने के ये सब मेरी सेवामें आने वाले प्रतिबन्ध हैं और वो प्रभुकी शरणभावना करे के अपने प्रभुके इर्द-गिर्द जब जीव रहेगो तब ठाकुरजी अपनी अविद्या आदि जो प्रतिबन्ध हैं उनकु दूर करेंगे.

एक बड़ी मजेदार (किशनगढ) स्टेट्र के जमानाकी बात मैनें पुराने मुखियाजीसुं सुनी हती. किशनगढ दरबारके माथे निधिस्वरूप बिराजे हैं, महाप्रभुजीको चित्रजी बिराजे है, नृत्यगोपाललाल बिराजे हैं. गाममें कोई गोस्वामी बालक पधारते तो दरबारके ठाकुरजीके दर्शन करवे भी पधारते. वा बखत नियम ऐसो हतो के जब तक दरबार स्वयं दर्शन करवे नहीं आवें तब तक दर्शन खोले नहीं जाते हते. दरबारकी उपस्थितिमें ही दर्शन खुलते. बालक दर्शन करवे पधारें तो उनकु ना भी नहीं कह सकें. ऐसी स्थितिमें यदि कोई कारणसुं दरबारकु दर्शन करवे आवेमें देर हो जाती तो मुखियाजी ठाकुरजीकु कछु अदकीकी सामग्री धराके बालकनूकु यों कहते रहते के ' ' बस अब भोग सरवे ही वाले हैं, भोग सरवे ही वाले हैं''. और जब दरबार स्वयं हाज़िर हो जाते तब दरबारकी प्रेज़न्स् में दर्शन खुलते. किशनगढ

दरबार अपने ठाकुरजीकी सावधानी गोस्वामी बालकसुं इतनी बरतते, गैर लोगनकी तो बात ही जाने दो. और श्रीमहाप्रभुजीके चित्रकी फ्रेममें एक छोटोसो सोनाको ताला रहतो जाकी सोनाकी चाबी हती. ताला लगाके दरबार चाबीकु अपने गलामें पहनते. इतनी सावधानी बरतते. ये केवल उदाहरणके तौरपे बात बता रह्यो हूं.

प्रभुसेवामें सावधान रहो :

प्रत्येक सेवाकर्ता वैष्णवकु अपने ठाकुरजीकी सेवामें या तरहकी सावधानी बरतनी चहिये. ये नन्दरायजीको भाव है. ऐसी सावधानी बरतो तो आपने ठाकुरकु अपनो मान्यो समज्यो जाय. ओर जब आपने ठाकुरजीकी सावधानी ही नहीं बरती तब तो कोई न कोई पूतना आयेगी, फिर तो तृणावर्त भी आयेगो, बकासुर भी आयेगो. फिर तो सारे ही असुर आते जायेंगे. एककु निकालोगे तो दूसरे आयेंगे. ये चेंटा और चमगादड़ जैसो खाता है, एककु निकालो और दस आवें. जब आप अपने ठाकुरजीकी या तरहकी सावधानी बरतोगे तब तो कोई नहीं आयेगो. क्यों? क्योंके वो सारी बाधाकु फिर ठाकुरजी स्वयं दूर करेंगे. ये बात समझावेकेलिये श्रीलालूभट्टजी श्रीमहाप्रभुजीको एक बहुत सुन्दर श्लोक उद्धृत कर रहे हैं. ' ' आद्येन भगवन्मार्गे बाधकानि बहूनि हि, द्वितीये तदभावो हि कृष्णेनैव भवेद् इति''.

प्रभुसुं जुड़े रहो, प्रभु स्वयं प्रतिबन्ध दूर करेंगे :

कोई भी मार्गमें, भक्तिकी ही बात नहीं है, कोई भी मार्गमें जा बखत अपन शुरुआत करें तब कई तकलीफें आती ही होवे हैं. अंग्रेजीमें याकेलिये महावरा है : टीज़िंग् प्रोब्लेम्. जब बच्चाकु दांत निकलें तब वाकु दस्त हो जाये, बुखार आ जाये कछु न कछु चलतो ही रहे है. वा बखत यदि सावधानी बरतो फिर अपने आप स्वस्थतासुं बच्चा बड़ो होवे लग जाय है. ऐसे ही जा बखत अपन भक्तिमार्गपे अग्रसर होयेंगे तो बाधक तो आयेंगे ही. पर यदि अपनने प्रभुकु नहीं छोड्यो तो सारे बाधक प्रभु स्वयं दूर कर देंगे यों श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं. तो ये पूतना वगैरह के सारे बाधक प्रभु दूर करेंगे यदि अपन प्रभुके प्रति सन्नद्ध रहे तो.

लीला और प्रभुसेवा में शकटासुर और वाको नाश :

वाके बाद श्रीलालूभट्टजी लीला और भगवत्सेवा के बीच परस्पर अनुरूपता दिखाते भये बहुत सुन्दर बात कह रहे हैं के भगवान् जब प्रकटे तब नन्दरायजीके घरमें बड़ो उत्सव भयो. ठाकुरजीके उत्सवमें नन्द-यशोदाजीने सब सगे-सम्बन्धीनकु बुलाये. जब सगे-सम्बन्धी घरमें आवे लगे तो ठाकुरजीकु गाड़ाके नीचे घोड़ीया बांधके वामें पौढा दिये. और नन्द-यशोदाजी सब सगे-सम्बन्धीनकी आगता-

स्वागतामें लग गये. मतलब, जाके प्राकट्यको उत्सव मना रहे हते वापेसुं ध्यान हट गयो. जब ऐसो भयो तब ठाकुरजीने वा गाड़ाकु ऐसी लात मारी के नन्द-यशोदाजीने उत्सव मनावेको जो सामान वहां इकट्ठो करके रख्यो हतो सो सब ढुल गयो, टूट गयो, चकनाचूर हो गयो*.

या बातकु समझावेकेलिये मैनें 'पुष्टिअस्मिता' कैसेट्में थोड़ी अलग ढंगसुं एक उपमा दी है. एक बारात निकली. वरराजा घोड़ापे बैठ्यो है और सब बारातियें नाच रहे हैं. अचानक घोड़ा बिदक गयो और वाने वरराजाकु पटक दियो. कोईने आके बरातीन्कु खबर दी के भई वरराजा गीर गये घोड़ापेसुं नाचते भये बराती कहवे लगे के यार नाचवे दो, मजा आ रही है नाचवेकी. अरे भई, जाकी बारातमें तुम जा रहे हो वो खुद घोड़ापेसुं गीर गयो है और तुमकु नाचवेमें मजा कैसे आ रही है?

प्रभुको उत्सव भी प्रभुसुं अधिक नहीं है :

(आज हवेलीन्में गामसुं भेंट-सामग्री मांग-मांगके जो उत्सव मनाये जाय हैं वामें बिचारे ठाकुरजीकी ऐसी ही गति होवे है) ठाकुरजीको उत्सव मना रहे हैं और ठाकुरजीपे ध्यान ही नहीं है कौन भाई आये? फलाने भाई आये के नहीं, मनोरथी आयो के नहीं, याको क्या भयो, वाको क्या भयो ... अरे, आओ आओ, तुम भी प्रसाद ले जाओ, अरे इनकु माला पहनाओ, अरे इनकु बीड़ा दो ... बस ऐसो ही चलतो रहे है. जाको उत्सव मना रहे हो वापे तो ध्यान है नहीं तुम्हारो बाकी सब जगह ध्यान है. कभी हवेलीमें कोई मनोरथ होतो होवे तब वहां जाके देखियो. हर मनोरथी ठाकुरजीके दर्शन करवेके बजाय दर्शन करवे कौन-कौन आयो, कौन नहीं आयो ... वाको ही दर्शन करतो मिलेगो. अन्दरके लोग ठाकुरजीकु पंखा भी करते होंयगे तो दर्शनार्थीन्कु देखते भये करते होंयगे. भले आदमी, ठाकुरजीकु हवा लग रही है के नहीं वो देख तो सही ठाकुरजीकु नहीं देखेंगे, दर्शन करवे कौन-कौन आयो वो देखेंगे. उत्सव जाको मना रहे हैं वापे तो ध्यान है नहीं और उत्सवपे इतनो ध्यान हो गयो. करके ठाकुरजीने सोच्यो के फेंको या गाड़ाकु. लात मारी हों प्रभुने वा गाड़ाकु लात मारी और नन्द-यशोदाजीने उत्सव मनावेकेलिये जो सामान वहां इकट्ठो करके रख्यो हतो वो सब ढुल गयो, टूट गयो, चकनाचूर हो गयो.

प्रभुसेवामें अनुपयोगी द्रव्यसञ्चय अनिष्टरूप है :

या लीलाको अर्थ श्रीलालूभट्टजी समझा रहे हैं :

''**पूर्वसञ्चित-स्वासक्ति-विषयीभूत भगवदनुपयुक्त-गृहरूप-शकटस्य**''.

अपन जब घर-परिवारमें रहते भये, आजीविकाके उपायन्कु करते भये भगवत्सेवा करे हैं तब

काफी कुछ द्रव्य-वस्तुको सञ्चय अपनो भी होवे ही है. वस्तु और सम्पत्ति के सञ्चयके संग सम्बन्धनूको और परिचयनूको भी सञ्चय होयगो ही. अब वो सञ्चय तो सब हो गयो पर यदि वो भगवत्सेवोपयोगी है तब तो वो संरक्षणीय है. ओर यदि प्रभुसेवामें वो सारो सञ्चय बाधक है तो प्रभु कह रहे हैं के वो सब सञ्चय नाशनीय है. खत्म करो वाकु. करके प्रभुने लात मारी.

जब अपनो अज्ञान निवृत्त होयगो तब अपने भी जीवनमें एक ऐसो मुकाम आयेगो के ' ' यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते, तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चयः''.

ये मुकाम तब आयगो के जब अपनी अहन्ता, अपनी ममता अपने माथे बिराजते ठाकुरजीसुं जुड़ी भई होयगी तब अपनकु ये बात समझमें आयगी के भगवत्सेवामें विघ्नरूप होवेवाली घरकी सञ्चित वस्तूनूकु हटाओ. क्या लेना-देना है अपनो उनसुं तब ये बात समझमें आयेगी. वो गाड़ा तब फिकेगो.

और एक बात समझो के भगवान्के चरणनूकु भक्तिरूप मान्यो गयो है. भगवान्को वाम चरण पुष्टिभक्तिको है और प्रभुको दक्षिण चरण मर्यादाभक्तिरूप है. भक्तिरूप चरणनूसुं वाकु (भगवत्सेवामें प्रतिबन्धक सञ्चयकु) उड़ा दियो जायगो, तोड़-फोड़ कर दी जायगी. ये बड़ी सौम्य तोड़-फोड़ होयगी. जब अपनी अहन्ता-ममता अपने प्रभुसुं जुड़ी होयगी तब अपनी भक्ति अपनकु ये समझायेगी के सेवामें बाधक होवे ऐसे बखड़जंतर इकट्ठे करके फायदा क्या?

भगवत्सुखार्थ कछु भी त्याज्य है :

श्रीगुसांईजी जब किशोर अवस्थामें हते तब बहुत अच्छी बीन बजाते हते. पर बीन बजावेवालेनूकी उंगलीयें कटके उनपे तारके निशान पड़ जाते होवे हैं. श्रीमहाप्रभुजीने एक दिन देख्यो के श्रीगुसांईजीकी उंगलीनूपे निशान पड़े भये हैं. आपने श्रीगुसांईजीसुं कही के ' ' तुम बीन अपने शौखके कारण बजा रहे हो पर ऐसे चीराके निशानवाली उंगलीनूसुं जब तुम ठाकुरजीको शृंगार करो हो तब ठाकुरजीकु तुम्हारी उंगलीएं कितनी चुभती होयेंगी? बन्ध करो बीन बजानो

देखो याको नाम है भगवदनुपयुक्त वस्तुको भक्तिवशात् त्याग. पर ये भाव तभी अपनेमें जग सके है और तब ही वो प्रामाणिक कहलावे के जब वो त्याग भक्तिवश कियो जाय, नहीं तो वो पाखण्ड कह्यो जायगो. अपन सब कछु छोड़वेको व्रत ले लें पर यदि अपनी अहन्ता-ममता प्रभुसुं जुड़ी नहीं होवे तो वो त्याग भी पाखण्ड हो गयो.*

निम्बार्क सम्प्रदायके केशवभट्ट काश्मीरी सब जगह शास्त्रार्थ कर करके खुदकी जीतके सर्टिफिकेट् इकट्ठे करते हते. ऐसे करते एक बखत वो चैतन्य सम्प्रदायके कोई विद्वान्के पास शास्त्रार्थ करवे गये. शास्त्रार्थ करवेके बाद केशवभट्ट काश्मीरी हार गये. जो जीते उनने उनके जीते भये जितने पत्र हते वो सब अपने पास रख लिये और कही के लिखो के अब तुम हार गये हो. उनने लिखके दे दियो. जब ये बात चैतन्यमहाप्रभुकु पता चली तो चैतन्यमहाप्रभुने पूछ्यो के ''यासुं तोकु कृष्णभक्तिमें क्या सहायता पहुंचेगी?'' तो उनने कही के कृष्णभक्तिमें तो यासुं कोई सहायता नहीं पहुंचेगी. तो उनने कही के जाओ, पत्र उनकु फिर दे के आओ. और साथमें ये भी लिखके दे आओ के तुम जीत गये ओर हम हार गये. जीत गये हते खुद पर जाके उनकु सर्टिफिकेट् दे आये के भई आप जीत गये हम हार गये. और ये तुम्हारो सर्टिफिकेट् पाछो तुम रखो. ये बात कब समझमें आयगी? जब भक्ति अपनी दृढ होयगी तो, नहीं तो नहीं आ सके है. नहीं तो पाखण्ड हो जाय. पर यदि भक्ति अपनी दृढ है तो ये मुकाम भी अपनेकु आ सके है.

चैतन्यमहाप्रभुको ऐसो ही एक दूसरो बड़ो सुन्दर प्रसङ्ग है. चैतन्य और उनके सहपाठी दोनों न्यायके बहुत अच्छे विद्वान् हते. दोनोंन्ने तर्कशास्त्र पर बड़ी अच्छी टीका लिखी हती. एक बखत दोनों मिले. दोनोन्ने एक दूसरेसुं कही के हमने न्यायशास्त्रपे टीका लिखी है. और बोले के चलो नावमें बैठके हमारी टीका तुम सुनो और तुम्हारी टीका हमकु सुनाइयो''. पहले चैतन्यमहाप्रभुने अपनी टीका सुनानी शुरु करी. जब अचानक उनने मुंह उपर करके देख्यो तो उनको सहपाठी रो रह्यो हतो. उनने पूछ्यो के ''तुम रो क्यों रहे हो?'' तो उनने कही के ''तुमने इतनी अच्छी टीका लिखी है के वाकु पढवेके पीछे हमारी टीकाकु कौन पूछेगो'' जैसे ही उनने ये कह्यो वैसे ही, वा ही क्षण चैतन्यमहाप्रभुने अपनी लिखी भई टीकाकु नदीमें बहादी. मित्रकु दुःख दे ऐसी टीका लिखके क्या फायदा? देखो, ये स्नेहकी बात है, अहंकी बात नहीं है.

*तो ये बात ध्यानसुं समझो के वो मुकाम अपनो तब आयेगो के जब अपनी पूतनाकु प्रभुने मार रखी होयगी. पूतना जिंदी होयगी तो ये मुकाम आनो नहीं है.

लीला और भगवत्सेवा में तृणावर्त और वाको नाश :

शकटभञ्जनकी लीलाके बाद लीलामें नन्दालयमें तृणावर्त आयो. तृणावर्त माने क्या? गोल-गोल घूमती भई आंधी जोर सारी धूल उपर उठा देवे. आंधी यदि बहुत जोरसुं चले तो कई चीजें वामें

फंसके उपर उठके जा सकें. जब गोकुलमें आंधी चली वा बखत, लीलाके वर्णनमें ऐसे आवे है के, यशोदाजीकु लग्यो के ठाकुरजी बहुत भारी हो गये हैं. भई माखन खायो है, मांको दूध पीयो है तो भारी तो होयगो ही न यशोदाजीसुं ठाकुरजीको भार सहन नहीं भयो करके यशोदाजीने ठाकुरजीकु जमीनपे बैठा दिये. जैसे ठाकुरजीकु जमीनपे बैठाये वैसे ही तृणावर्त आयो और ठाकुरजीकु उड़ाके ले गयो. तृणावर्तमें कृष्ण उड़ गयो तब यशोदाजीकु अहसास भयो के अपनने कछु गड़बड़ करदी.

लीलामें तो तृणावर्तको रूप एक असुरने धारण कियो हतो पर सेवामें ये तृणावर्त क्या है वाकी व्याख्या करते भये श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं:' ' तृणावर्तो भगवत्साक्षात्कारप्रतिबन्धरूपो रजोगुणात्मा''.

भगवान्कु अपन पहचान नहीं सकें वा प्रकारकी अपने मनकी चञ्चलता ही तृणावर्त है. मनकी ये चञ्चलता ऐसी है के प्रभु अपने सामने प्रकट हो जायें तो भी अपनो ध्यान चञ्चलताके कारण प्रभुपे नहीं जाके यहां-वहां भटकतो रहे. ये तृणावर्त है. या तृणावर्तमें अपनो प्रभु उड़ सके है. या तृणावर्तमें प्रभु कब नहीं उड़ेगो के जब अपनी अहन्ता-ममता प्रभुसुं जुड़ी भयी होयगी. तब प्रभु अपनकु कभी भारी नहीं लगेगो के जैसे यशोदाजीकु भारी लग्यो हतो.

अपने यहां या बातकु समझाने वालो एक बड़ो सुन्दर प्रसङ्ग है. श्रीगुसांईजीके सात बालकन्ने मिल-जुलके अन्नकूटको उत्सव मनावेको विचार कियो. उत्सव मनावेकेलिये श्रीगिरिधरजीने गुसांईजीसुं दो बखत आज्ञा मांगी. गुसांईजीने दोनों बखत आज्ञा नहीं दी. तीसरी बखत जब श्रीगिरिधरजीने पूछ्यो तब श्रीगुसांईजीने कही के यासुं लौकिकता बढ़ जायेगी. तृणावर्त उठेगो. करनो होय तो करो. श्रीगिरधरजीने फिर भी अन्नकूटको उत्सव कर्यो. वा घरमें अन्नकूटको उत्सव पहली बार भयो. श्रीगुसांईजी बिराजते हते तब भी तृणावर्त ऐसो उठ्यो के छठे लालजी श्रीयदुनाथजी नाराज हो गये. उनने कही के हम या उत्सवमें शामिल नहीं होंयगे. क्योंके हमकु ठाकुरजी बंटवारामें नहीं मिले हैं. दूसरी ओर श्रीगुसांईजीके एक बेटीजी अपने ठाकुरजीकी सेवाकु छोड़के वा उत्सवमें शामिल होवे आये. जब वो आये तब श्रीगुसांईजीने अपने बेटीजीसुं पूछ्यो के क्या तु अपने ठाकुरजीकी सेवा करके आयी है? तब बेटीजीने कही के वो तो घरके ठाकुर हैं कभी भी पहुंच लुंगी, या उत्सवको दर्शन कब होवेवालो है वहां वार्तामें स्पष्ट लिख्यो है के ' ' तब श्रीगुसांईजीने गारी देके खीजके कही के तिहारे घरमें कोई ओर बिराजत है कहा? जाओ अपने घर''. ब्याही भयी बेटीकु गाली देनो बड़ो अनुचित मान्यो जाय है. कुंवारी बेटीकु तो गाली देनो इतनी बुरी बात नहीं है पर ब्याही भयी बेटीकु गाली देनो बुरी बात कहवावे. तो देखो, जब ये तृणावर्त उठे है तब वामें अपने घरको ठाकुर अपने मनमेंसुं या तरहसुं फिंक जाय है. मनकी

चञ्चलताके कारण जहां मेला जुट्यो होवे वहां अपनकु दौड़वेकी इच्छा हो जाय है. और ये दौड़वेकी इच्छामें सफर् (कष्ट सहन) कौन करे है? अपने घरको ठाकुर.

श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के ये तृणावर्त शान्त कब होयगो? बात ध्यानसुं समझो के जब तुम्हारी अहन्ता-ममता भगवान्सुं जुड़ी भई होयगी तो वा तृणावर्तकु तुम्हारे घरमें बिराजतो ठाकुर मार देगो, नहीं तो अब वाकु कौन मार सके है? नन्दरायजीके वहां तो वसुदेवजी अब आने नहीं है तृणावर्तकु खतम करने. तुम्हारो घरको ठाकुर मार सके है तुम्हारे तृणावर्तकु, पर शर्त ये है.

सावधानी हटी दुर्घटना घटी :

अब देखो, कितनी गज़बकी बात है के यशोदाकु अपनो ठाकुर भारी लग रह्यो है पर तृणावर्त जो घासके तिनकाकु उड़ावे है वाकु हलको लग्यो. तो ध्यानसुं समझो के जब तुम्हारे मनमें वासुं दूर होयवेकी इच्छा जगेगी तब वो तुमकु भारी भी लगवे लगेगो और तृणावर्तकेलिये उड़ जावेकेलिये वो बहुत हलको भी हो जायगो. ये जैसे लीलाकी कथा है वैसे ही सेवामें भी हो सके है. यासुं अपनकु सावधानी बरतनेकी आवश्यक्ता है ये श्रीलालूभट्टजी बहुत सुन्दर समझा रहे हैं के : ''एवम् अत्रापि भजनप्रतिबन्धरूपो रजोगुणो नश्यति''

यदि तुम अपनी अहन्ता-ममता अपने माथे बिराजते ठाकुरजीसुं जोड़के चलोगे तो जा रजोगुणके कारण तुम्हारो मन प्रभुसुं विमुख हो रह्यो है वा रजोगुणरूपी तृणावर्तको तुम्हारे घरको ठाकुर नाश करेगो, करेगो और करेगो ही. बस, शर्त इतनीसी है के तुम्हारे घरके ठाकुरसुं तुम जुड़े हो के नहीं. शास्त्रमें कह्यो गयो है ''धर्मएव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित:'' धर्मकु तुम खतम करोगे तो धर्म तुमकु खतम कर देगो. धर्मकी तुम रक्षा करो, धर्म तुम्हारी रक्षा करेगो.

वाके बाद एक मुकाम लीलामें बड़ो सुन्दर आयो है के जा मुकामकु श्रीलालूभट्टजी कहे रह हैं :

> **''तत्र यथा यशोदाया विश्वरूपदर्शनेन महिमज्ञापनम्, तथा इहापि साधकस्य सेव्यस्वरूपे एव स्वप्नादिद्वारा कश्चित् अनुभवोपि जायते''**

लीला और सेवा में विश्वरूपदर्शन :

लीलामें जब यशोदाजी श्रीकृष्णकु दूध पिला रही हती तब अचानक उनकु भगवान्‌के मुखारविन्दमें विश्वके दर्शन भये. ऐसे ही जब तुम्हारे रजोगुण नष्ट हो जायेंगे, जब तुम्हारी अहन्ता-ममता तुम्हारे सेव्यप्रभुसुं जुड़ गयी होयगी तब तुम्हारो ठाकुरजी तुमकु अपनेमें विश्व दिखानो शुरु करेगो. (तब तुमकु ये समझमें आवे लगेगो के) जो कछु है सो मेरे ठाकुरजीमें है.

श्रीगुसांईजीके बेटीजीकी बात बताई वामें भी श्रीगुसांइजीने येही बात कही हती. श्रीगुसांईजीकी बात सुनके जा बखत बेटीजी अपने घर गये वा बखत जैसे यशोदाजीकु अपने कृष्णके मुखमें विश्वके दर्शन भये वैसे आठों निधिस्वरूपके दर्शन बेटीजीकु अपने ठाकुरजीमें भये के श्रीनाथजी भी ये ही हैं, मथुराधीशजी भी ये ही हैं, नवनीतप्रियजी भी ये ही हैं, द्वारकाधीश भी ये ही हैं, विठ्ठलनाथजी भी ये ही हैं ... ये वार्तामें आवे है.

प्रभुके विश्वरूपको दर्शन सेवाकर्ताकु कब हो सके है के जब वाको रजोगुण शान्त हो गयो होवे, जब अपने प्रभुमें अपनी चित्तवृत्तिकी स्थिरता प्राप्त करी होवे और अपनी अहन्ता-ममताकु अपनने प्रभुसुं जोड्यो होय तब या तरहको विश्वरूप दर्शन हो पायगो. और तब अपन अपने ठाकुरजीकी सेवामें सब कछु मान पावेंगे, अपन अपने ठाकुरमें सबकछु जान पायेंगे, अपने ठाकुरजीमें अपन सब मजा ले पायेंगे के जो कछु है सो मेरे माथे बिराजतो ठाकुरजी है.

लीला और सेवामें गर्गाचार्यको आगमन-भविष्यकथन :

याके बाद श्रीलालूभट्टजी बहुत सुन्दर एक बात कह रहे हैं के लीलामें एक दिन नन्दरायजीके घर गर्गाचार्य आये और ये बात बताई के ' ' बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते, गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जना:''. व्रजके सब लोग बड़ी चिन्ता कर रहे हते के ये बालक कैसो है के जाकु हर बखत कोई तकलीफ आ जाय है. कभी पूतना आ गयी, कभी तृणावर्त आ गयो, कभी मांकु विश्वरूपको दर्शन हो गयो... और जब नामकरण संस्कारकेलिये गर्गाचार्य आये तब उनने नन्दरायजीकु ये बात और बता दी के आपकु जो पुत्र भयो है वाको कोई एक ही नाम नहीं है, अनेक नाम हैं. वाको कोई एक रूप नहीं है, अनेक रूप हैं. और ये सब बातें हर कोईकु पता चल सके ऐसी नहीं है, वो तो मेरे जैसेकु ही पता चल सके है. ऐसे यदि अपन भी अपने ठाकुरजीकी सेवा नन्दरायजी-यशोदाजीकी तरह तन्मयतासुं करते होंयगे तो कोई सच्चो भगवदीय आके अपनकु ये हकीकत बता जायगो के तुम क्यों घबराओ हो; श्रीनाथजी, नवनीतपियजी, मथुराधीशजी, द्वारकाधीश ...जितने भी नाम हैं वो सब तुम्हारे माथे बिराजते ठाकुरजीके ही नाम हैं. पुरुषोत्तमसहस्रनाममें आप पढ़ो तो आपकु पता चलेगो के ' शिव' नाम भी अपने

ठाकुरजीको है, ‘ब्रह्मा’ नाम भी अपने ठाकुरजीको है, ‘कालान्तक’ नाम भी अपने ठाकुरजीको है, और ‘‘आनन्द दान करनेवालो’’ नाम भी अपने ठाकुरजीको ही है. सो जैसे गर्गाचार्यजीने नन्दरायजीके घर आके कही के ‘‘बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते, तान्यहं वेद सर्वाणि’’ तेरे लालाके उन सब नामन्कु मैं जानुं हुं ऐसे अपने घर भी कोई भगवदीय आके अपने भगवान्कु भजनेके माद्दाकु सम्बल देगो के तुम अपने ठाकुरजीमें कभी भी न्यूनता मत विचारो. तुम्हारे माथे बिराजते ठाकुरजीके ही सारे नाम, सारे रूप हैं. तुम आश्वस्त होके अपने ठाकुरजीकी सेवा करो, सावधानीसुं सेवा करो. ऐसे भगवदीयको संग तुमकु मिलेगो. पर वो भगवदीयको संग कब मिलेगो के जब तुम तुम्हारे ठाकुरजीसुं जुड़े भये होगे, नहीं तो तो ऐसे-ऐसे पाखण्डीन्को ही संग होयगो के जो तुमकु निरन्तर ये समझाते रहेंगे के तुम्हारे घरके ठाकुरजीमें क्या धर्यो है? ये कोई निधिस्वरूप थोड़ी हैं, सच्चे स्वरूप तो निधिस्वरूप ही होवे हैं, श्रीमहाप्रभुजीकी निधि तो वहां है, श्रीगुंसाईजीकी निधि तो वहां है, सच्चो स्वरूप तो वहां बिराज रह्यो है, वहां अपरस है, वहां नेग-भोग है, वहां सजावट है, वहां छप्पनभोग है, वहां कुनवारा है, वहां केसरके हिंडोला है ... ये सब सुन-सुनके तुम्हारो तृणावर्त उठनो शुरु होयगो. वा तृणावर्त (आंधी) में फिंकेगो कौन? तुम नहीं फिंकोगे, तुम्हारो ठाकुर फिंक जायगो, ये बातकु ध्यानसुं समझो. ये तृणावर्त उठ्यो और तुम्हारो ठाकुर तुम्हारे घरसुं बहार फिंक जायगो. फिर तुमकु अपने ठाकुरकी सेवामें मन नहीं लगेगो. यहां-वहां दौड़नेमें मन लग्यो रहेगो. जैसे तृणावर्त दौड़े है ऐसे तुम भी दौड़ते हो जाओगे. ये बात श्रीलालूभट्टजी यहां समझा रहे हैं.

अपन ‘पुरुषोत्तमसहस्रनाम’ स्तोत्रको पाठ करे हैं तब अपने भीतर ये भावना दृढ होनी चहिये के ये हजारोंके हजारों नाम मेरे माथे बिराजते ठाकुरजीके हैं. अपन कीर्तन गा रहे हैं तो वा कीर्तनगानमें अपनकु ये भाव दृढ होनो चहिये के ये सारो कीर्तन मेरे माथे बिराजते ठाकुरजीकी लीलाको कीर्तन है. ‘‘बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य मे’’ मेरे माथे बिराजते ठाकुरजीके कितने सारे नाम हैं, कितने सारे रूप हैं, कितने सारी लीलाएं हैं ... ये भाव अपनकु तब दृढ होयगो के जब अपन अपने ठाकुरजीमें विश्वरूप देखनेको माद्दा जगायेंगे. तब अपनकु ये पता चलेगो के सारे विश्वमें जितने भी नाम, रूप और लीलाएं हैं वो सब मेरे माथे बिराजते ठाकुरजीके हैं.

लीला और सेवा में जानुरिङ्गण :

भागवत्में भगवल्लीलाके वर्णनमें आवे है के वाके बाद ठाकुरजी नन्दालयमें घुटरन् चलवे लगे. प्रभुके वा चरित्रको बहुत सुन्दर भाव श्रीलालूभट्टजी बता रहे हैं के विराट पुरुषके स्वरूपमें जो भी असुर भाव हैं वो घूटनमें रहे हैं. जैसे

''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यकृतः,
उरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत,
चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायतः,
मुखाद् इन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत''

तो विराट स्वरूपके वर्णनमें विश्वकी सारी शक्तिएं प्रभुके कोई-कोई अङ्गन्में बिराजी भयी हैं ऐसो वर्णन आवे है. वामें ये बतायो हैके जो आसुरीशक्ति है सो प्रभुके घुटनामें बिराजी भयी हैं. प्रभु जबनन्दके आंगनमें घुटरुन चले तब प्रभुने सारी आसुरी शक्तिन्कु घिसदियो है.

ऐसे ही तुम्हारो सेव्यस्वरूप भी जब तुम्हारे आंगनमें घुटरुन चलनो शुरु करेगो तब तुम्हारे घरमें, परिवारमें रहे भये सारे आसुरी भावन्की शक्तिकु प्रभु घुटरुन् चलके घिस देगो.

तुम अपने ठाकुरजीसुं जुड़ोगे तो ठाकुरजी भी सबसुं जुड़ेंगे:

बालक जब जन्मे तब तो वो केवल मांकु ही पहचानतो होवे है, बापकु भी बड़ी मुश्किलसुं बादमें कभी पहचानतो होवे है. पर धीरे-धीरे जैसे-जैसे बड़ो होतो जाय है वैसे-वैसे लोगन्कु पहचानवेको सर्कल् बड़ो होतो चल्यो जाय है. और जैसे-जैसे सर्कल बढतो जाय है वैसे-वैसे वाकु घरके हर कोनामें जावे-देखवेकी इच्छा होवे है. बालक घुटरूं क्यों चले है? क्योंके बालक जहां पड्यो भयो है वहां वाको मन नहीं लगे है. यालिये वो घरके हर कोनामें घूमे है, घरके हर व्यक्तिकु देखे है, घरकी हर वस्तुकु देखे है, हर चीजकु हाथमें उठावे है, मुहमें लेवे है, चीजन्कु फेंक-तोड़के देखे है ... ये बालककी सहज वृति है. ऐसे अपने घरमें भी जो अपने व्यक्ति हैं, परिवारजन हैं उन सबनके दिल जब अपने ठाकुरजीसुं अपनी तरह जुड़ेंगे तब ठाकुरजी घूटरूं चलके उन तक पहुंचनो शुरु करेंगे. परन्तु यदि अपन खुद जब अपने ठाकुरजीसुं जुड़े भये नहीं होंयगे तो फिर अपनो ठाकुरजी घुटरूं चलके सबके पास कैसे जायगो?

घुटरूं चलवेको बालकको मनोविज्ञान यही है के परिवारके हर सदस्यकु वो जांचनो परखनो चाहे है के मोकु परिवारको कौनसो सदस्य मजा दे रह्यो है, कौन मोकु खिला रह्यो है? कौन मोकु खिलोना दे रह्यो है, मिठाई दे रह्यो है ... घूटरूं चलतो बालक सिर्फ मांके दूधपे अवलम्बित नहीं रह जावे है. जहां वाकु मजा आवे है वहीं वो चल्यो जाय है. पाछो भले ही लौटके मांके पास आ जावे.

तो ऐसे जा बखत अपन अपने ठाकुरजीको लालन-पालन तन्मयतासुं करेंगे तब अपने घरको ठाकुर भी घुटरूं चलके अपने परिवारके हर सदस्यके पास पहुंचनो धीरे-धीरे शुरु करेगो. मतलब, अपने परिवारको हर सदस्य तब अपने ठाकुरजीके प्रति भावाकर्षित होयगो, वाके बिना ऐसो होनो सम्भव नहीं है.

एक बात और समझो के यदि अपन जडतासुं ठाकुरजीकी सेवा-पूजा करें, दरवाजा बन्ध करके या दुर्वासाके अवतार बनके सेवा करें, सेवामें सारो दिन छू गयो-छू गयो करते रहें तो, विचार करो, अपनो ठाकुर बिचारो घुटरूं चलके जायगो कौनके पास वो बिचारो सोचेगो के या घरमें तो बहुत लफड़ा है. ऐसो देखके ठाकुरजी घरमें सबके पास जानो बंध कर देंगे. पर जब अपन खुद बच्चाकु इतनो खिला रहे हैं, वाके संग अच्छी तरहसुं जुड़ रहे हैं तो घरमें घूमवेको बच्चाको विश्वास बढे है. या प्रक्रियामें ये सहज सम्भव है के बच्चा कोई चीजकु फेंक भी देवे. बच्चाने घुटरूं चलनो सीख्यो है तो मुंहमें नहीं लेवेकी चीजकु मुंहमें भी लेगो. ये सब ऊधम बच्चाके साथ होवें ही हैं. परन्तु सोचो के इन्ही ऊधमके कारण तो बच्चा परिवारके सदस्यको प्यारो बनतो होवे है मांके अलावा परिवारके सदस्यको बच्चा प्यारो या ही प्रक्रियासुं तो बने है अपन घरमें बैठे होवें और बच्चा घुटरूं चलके अपने पास आ जाय तो वापे कितनो प्यार आयगो. ऐसे ही घरमें आप ठाकुरजीकी सेवा कर रहे हो और जैसे ही ठाकुरजी परिवारके कोई सदस्यकु प्यारो लगनो शुरु भयो, मतलब, समझो के ठाकुरजी घुटरूं चलके वाके पास पहुंच गये. सोचो के अभी तक अपन ही ठाकुरजीकी सेवा कर रहे हते. अचानक घरके दूसरे सदस्यकु भी सेवा करवेकी इच्छा भई. मतलब ये वाको इन्डिकेशन् है के ठाकुरजी घुटरूं चलके वाके पास अब पहोंच्यो. अभी तक ठाकुरजी केवल मांको दूध पी रह्यो हतो, मांके गोदमें सो रह्यो हतो, पलनामें सो रह्यो हतो, घुटरूं चलवेकी वाकी ताकत नहीं हती. पर जब अपनी सेवाको आनन्द, अपनी सेवाको उमङ्ग, अपनी सेवाको उल्लास जब दूसरेमें भी सन्क्रान्त होवे तो समझोके अब ठाकुरजीने वाके पास जानो शुरु कियो है. एक आदमी हंसे तो दूसरेकु भी हंसी आवे, एक आदमी रोवे तो दूसरेकु भी रोनो आवे, एक आदमी बीमार होवे तो दूसरेकु भी बीमारी आवे, एक आदमीकु उबासी आवे तो दो-चारकु उबासी आ ही जायगी. तो ये क्या है? एक-दूसरेको भाव एक-दूसरेमें सन्क्रान्त होवे है. ऐसे अपने ठाकुरजीकी भक्तिके उमङ्गको भाव जा बखत दूसरेमें सन्क्रान्त भयो तो वाकु या बातको इन्डीकेशन् समझो के अब ठाकुरजीने पलना और मांकी गोद छोड़के घुटरूं चलनो शुरु कर दियो.

> ''कब मेरो मोहन चलेगो घुटरुअन तब हों करूंगी बधाई,
> सर्वस्व वार देहोंगी तब फिर मैया कही मोसुं बोले
> कब मेरो मोहन चलेगो घुटरुअन तब हों करूंगी बधाई''

जब अपनी सेवाकु देखके अपनी सेवाके आनन्दकु देखके परिवारको दूसरो सदस्य भी या बातकेलिये लालायित हो जाय के भई कछु सेवा हमकु भी दो, हम भी करेंगे. बस, तो ठाकुरजी घुटरूं चलवे लग गये. या रहस्यकु समझो. कितनो मीठो रहस्य लीलाके अनुरूप सेवामें ये है के अब वाने चलनो शुरु कियो. अब कछु ऊधम होयगो. बच्चा है, ऊधम नहीं करे तो बच्चा काहेको कहेवावेगो लीलाके वर्णनमें आवे है के जब ठाकुरजीने चलनो शुरु कियो तब नन्दरायजीके जूता पहनके ठाकुरजी रसोईमें घुस जाते. एक दिन तो नन्दरायजीके पूजाके शालिग्रामकु भी ठाकुरजीने मुखारविन्दमें पधरा लिये. तो ऐसे कुछ ऊधम भी होयेंगे. वो ऊधम बाललीला ही तो है न. वाकी तो फिर मजा ही लेनी चहिये तभी तो बालभावको आनन्द है, नहीं तो तो बालभावको आनन्द ही क्या

भक्त दोषज्ञ नहीं बन सके है :

याके पीछे बहुत सुन्दर लीलाको वर्णन श्रीलालूभट्टजी कर रहे हैं.

> **''चौर्यादिप्रसङ्गे, व्रजसुन्दरीभिः भगवतो दोषेषु निवेदितेषु महिमज्ञानाभावेऽपि, केवलसस्नेहात्, न मातृचरणैः दोषाः परिगृहीताः, ''न ह्युपालब्धुम् ऐच्छत्'' (भाग.पुरा.१०।८।३१) इति वाक्याद्, एवमेव, भगवदीयो ज्ञानरहितोऽपि भजनस्वभावात् न भगवति दोषं गृह्णाति''.**

ठाकुरजीने घुटरूं चलवेके बाद अब खड़े होके चलनो शुरु कियो. जब खड़े होके चलनो शुरु कियो तो गोपीन्के घरमें और यहां-वहां माखन चोरनो भी शुरु कियो. अब तो यशोदाजीके पास वाकी शिकायतें जानी शुरु भईं के तुम्हारो बालक हमकु ऐसी तकलीफें दे रह्यो है, वैसी तकलीफें दे रह्यो है. श्रीलालूभट्टजी यहां लीलाके वा पक्षपे अपनो ध्यान आकर्षित करा रहे हैं के जब शिकायतें भईं तब यशोदाजीको एटिट्युड् वा बारेमें क्या हतो? यशोदाजीने वो सारी शिकायतें सुनी, पर उनने अपने बालकको दोष नहीं मान्यो.

शिकायतें तो सेवा करवेवालेकु भी आयेंगी के बड़े भगवदीय बने हैं, दिन भर सेवा करे हैं, यहां नहीं आवे हैं, कोईसुं हिले-मिले नहीं हैं, परिवारमें मिले-जुले नहीं हैं, शादी-ब्याहमें भी नहीं आवे हैं ... ऐसी-ऐसी पास-पड़ौसकी सब शिकायतें आयेंगी. पर तब अपनकु अपने ठाकुरजीको दोष

नहीं दिखलाई देके यशोदाजीको भाव ही अपने मनमें दृढ रहेगो के

> ''जाको जो बिगार कियो मोसों सो मांग लेहो,
> गारी मत दीजो मो गरीबनीको जायो है''

मेरे ठाकुरजीकी तुम निन्दा मत करो, बाकी तुमकु जो कहनो होवे सो कहो. पर ये भाव अपनमें कब जगेगो? ये भाव तब जगेगो के जब अपनने अपने ठाकुरजीकु अपनो सर्वस्व मान्यो होवे. वाके पहले यदि अपनने वो भाव जगायो भी न तो न तो वो गाममें कामको है, न भक्तिमें कामको है और न परिवारमें कामको है. परन्तु जा बखत ठाकुरजी प्रति यशोदाजीके जैसी भावकी दृढता हो जायगी तब फिर सबकु ये बात समझमें आ जायगी के या भावको माधुर्य कितनो है. अपने किशनगढके नागरीदासजीने ये कह दियो के

> कृष्णकथा गुण गात न जायो,
> गृह व्यवहार भुरटको भारो सिरपरतें उतरायो,
> नागरियाको श्रीवृन्दावन् भक्तितत्त्व बैठायो.

कृष्ण भक्तमनको चोर है :

ये भाव तब प्रकट हो सके है के जब अपनो कृष्ण चलवे लग जाय और माखन चोरवे लग जाय. माने जाको जो हिस्सा है वो हिस्सा भी चोरके खुद खा ले. ये हिस्सा क्या है? ये हिस्सा सबके प्रति रह्यो भयो अपनो कछु न कछु कर्तव्य है. सबके साथ हिलवे मिलवेको नाता है. मगर जा बखत ठाकुरजीमें अपनी एकाग्रता बढी तो अपने मनको सारो माखन ठाकुरजी चोर जा रह्यो है. अब जब ठाकुरजी वा माखनकु चोर जा रहे हैं तब शिकायत तो आयेंगी ही. शिकायत तो नागरीदासजीके प्रति भी आती ही होंयगी के भई दिनभर भक्ति करते रहे हैं. पर वा मुकामपे पहुंचवेके पीछे लोगन्की बातें चुभनी बन्ध हो जायेंगी. भक्त फिर ये सोचवे लग जाय है के ठाकुरजीको यामें कोई दोष नहीं है. ''न ह्युपालब्धुम् ऐच्छत्'' (भाग.पुरा.१०।८।३१) ये एक मुकाम सेवामें प्रकट होयगो. और जब ये मुकाम प्रकट होयगो तब वामें

''भगवदीयो ज्ञानरहितोऽपि भजनस्वभावात् न भगवति दोषं गृह्णाति''.

बहुत पढे-लिखेकी या तबक्कापे जरूरत नहीं है. या तबक्कापे तो अपने भजनीय ठाकुरजीके

प्रति अपनी ममता ही अपनेकु ये समझा देगी. अब अपने ठाकुरजीको कोई दोष अपनकु दिखलाई नहीं देगो, गामकु भले दिखलाई दे पर अपनकु दिखलाई नहीं देगो.

विश्वम्भर भगवान् भावभूखो है :

याके बाद लीलालमें श्रीठाकुरजीके माटी अरोगवेको प्रसङ्ग आयो है. ठाकुरजीने माटी खाई तब सब लोगन्ने यशोदाजीसुं फरीयाद करी के तुम्हारो बालक माटी खावे है. यशोदाजीने जब ठाकुरजीसुं पूछी तब ठाकुरजीने यशोदाजीकु कही के ये सब लोग जूठ बोल रहे हैं. मैने माटी नहीं खाई है. तब यशोदाजीने ठाकुरजीसुं कही के ''दिखा, मुंह खोल''. ठाकुरजीने जैसे ही अपनो मुखारविन्द खोल्यो वैसे ही यशोदाजीकु वामें सारो विश्व दिखलाई देवे लग्यो. यहां पाछो विश्वरूपको दर्शन यशोदाजीकु भयो है.

या लीलाकी सेवाके साथ अनुरूपता क्या है वो बात श्रीमहाप्रभुजीने सुबोधिनीजीमें समझायी है. वहां आप लिखे हैं के आदमी खावे क्यों है? क्योंके वाकु भूख लगे है. पर, एक बात समझो के माटीकी भूख नहीं होवे है. माटी खावेसुं भूख मिटे भी नहीं है. प्रभुने अपनी या बातकु प्रकट करवेकेलिये के मैं कोई भूखके मारे कछु नहीं खा रह्यो हूं गीतामें अर्जुनसुं कह्यो है के ''पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति, तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः''. फल होय, फूल होय, पत्र होय जो भी होय; भक्तिसुं मोकु दो. भक्तिसुं धरोगे तो प्रभु कछु भी अरोगवे तैयार हैं. बाकी तो छप्पनभोग-कुनवारा भी भक्तिसुं नहीं पर कोम्पिटिशन् सुं करोगे, वाने कियो है तो हम भी करेंगे, तो प्रभु कछु सामग्रीके भूखे नहीं है. या बातकु अपनकु सेवामें भी स्पष्ट समझनी चहिये के अपन जो भी कछु भोग धरेंगे वो प्रभु अरोगेंगे. पर अरोगवेकी प्रभुकी शर्त है के तुम जो भी प्रभुकु अरोगाओ वाको गाममे प्रदर्शन मत करो, कोईके साथ कोम्पिटिशन् मत करो के वाने ऐसो कियो तो हमकु भी वैसो करनो. अपनी भक्ति अपनकु समझाती होय के ये चीज अच्छी है, बस भक्तिसुं अपने प्रभुकु तुम धरो, प्रभु जरूर अरोगेंगे अरोगेंगे अरोगेंगे. ''पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति, तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि''. प्रभु गीतामें आज्ञा करे हैं के मैं या लिये अरोगु हूं क्योंके मोकु भक्तिसुं भोग धर्यो है. भूखके कारण मैं अरोगुं नहीं हूं. प्रभुकु भुख नहीं लगे है.

छप्पनभोग भी तुच्छ हो सके है :

हमारे ठाकुरजी पहले जोधपुर बिराजते हते. वहांसुं किशनगढ पधारे. किशनगढसुं सन् चालीसके आस-पास श्रीगोकुलनाथजी तातजी महाराजने हमारे ठाकुरजीकु बड़े मन्दिरमें पधाराये. वा बखत एक

ऐसो कायदा आयो के बड़े मन्दिरकी प्रिमाइस् में जो भी ठाकुरजी बिराजते होंगे वो ट्रस्टके कहे जायेंगे. दादाजीके पास वो लेटर् साईन् होवेकेलिये आयो. दादाजीने कह्यो के भई, क्या लिख्यो है पत्रमें पढ तो मैने कही के ' ' यामें लिख्यो है के बड़े मन्दिरमें बिराजते सब ठाकुरजी पब्लिक् (सावर्जनिक) हो जायेंगे. तो दादाजीने कही के ' ' ठाकुरजीकु अपन पधरा लें पीछे सही करदें. अपनो क्या जाय अपनकु तो बड़े मन्दिरमें रहनो है नहीं''. हमने हमारे ठाकुरजी पधरा लिये, पीछे सही करदी. सबन्सुं अपने क्यों झगड़ा करनो जाकु जो करनो होवे सो करो. हमारे ठाकुरजी जब बम्बई पधारे तबसुं तातजी महाराजने उनकु सुबह-शाम रोज दो-ढाई सेरको दूधको डबरा भोग धरवेको नियम बनायो हतो. ओर भी सामग्रीएं आती हती. जब हमने हमारे ठाकुरजी वहांसु पधरालिये तब कुछ ट्रस्टीन्ने कही के ' ' ठाकुरजी पधरा तो लिये पर श्यामबावा क्या नियमको दूधको डबरा धर सकेंगे'' मैने उनकु बुलाके कही के देखो ठाकुरजीकी नो लाख गैया हैं, वामें ढाई सेर दूधके डबराकी क्या कीमत तुम समझ रहे हो ढाई सेर दूधको डबरा धरते हते तो कौनसो बड़ो तीर तुमने मार्यो और मैं यदि पाव भर दूधकी कटोरी भोग धरुंगो तो वो भी ठाकुरजीकी नो लाख गैयान्के दूधके सामने ढाई सेरके डबरा जितनी ही होयगी. और फिर हम हमारे ठाकुरजीकु डबरा धरें के कटोरी धरें के दूधकी एक बूंद ही धरें, तुम्हारे वासु क्या लेन-देन के हम क्या धर रहे हैं और क्या नहीं धरेंगे? हमकु हमारे ठाकुरजी दूसरेकु नहीं सोंपने हैं, बस खतम हो गई बात. तो ट्रस्टीएं कहवे लगे के ये ठाकुरजीकु भूखे मार देंगे, दूधको एक डबरा भी नहीं धरे पायेंगे.

भक्त्युपहृतम् अश्नामि :

तो देखो, ऐसी सब खुराफात अपने मनमें जगे है. क्यों जगे है? क्योंके अपन यों समझे हैं के ठाकुरजी भूखके कारण अरोगे हैं. तो एक बात समझो के अपने ठाकुरजी भीम नहीं है. ठाकुरजी अपनो वृकोदर नहीं है, अपनो ठाकुरजी तो भक्त्युदर है. ' वृकोदर' माने ऐसो आदमी के जाके पेटमें ऐसी अग्नि होवे के वामें जितनो डालो वो सब भस्म हो जाय. तो अपनो ठाकुरजी वृकोदर नहीं है अपनो ठाकुरजी तो भक्त्युदर है. भक्तिसुं जो अरोगाओ ठाकुरजी अरोगेंगे. बाकी ठाकुरजीकु अरोगवेकी कोई गरज नहीं है. क्यों अरोगें ठाकुरजी? जो विश्वको पालनहार है वाकु तुम्हारी धरी भई सामग्रीकु अरोगवेकी क्या जरूरत है? पर वो कछु भी अरोगवेकेलिये तैयार है, वो शबरी के जूठे बेर भी अरोगवेकु तैयार है. शर्त सिर्फ इतनी है के वो भक्तिसुं धरे होने चहिये. ' ' तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मन:''. तुमने ऐसे समझ लियो है के ठाकुरजीकु मिठाईकी, मठड़ीकी, माखनकी, मिश्रीकी भूख है. ठाकुरजीकु कोई चीजकी भूख नहीं है. ठाकुरजीकु केवल भक्तिभावकी भूख है. भक्तिभावसुं धरी तो पानीकी लोटी भी ठकुरजी अरोगेंगे. और भक्तिभावसुं नहीं धर्यो तो ठाकुरजी माखन, मिश्रि, मिठाई कु देखेगो भी नहीं, ठाकुरजी वाको भूख्यो नहीं है. ये बात अपनकु साफ तौरपे समझ लेनी चहिये.

छोलाके आगे छप्पनभोगकी क्या बिसात :

ठाकुरजीकु भोग धरते बखत अपनकु ये भाव कब जगेगो? तब के जब अपनो ठाकुरजीके प्रति भक्तिभाव दृढ होयगो. जब ठाकुरजीके प्रति भक्तिभाव दृढ होयगो तब अपनी भोग-सामग्री अरोगवेकी ठाकुरजीकु भी इच्छा होयगी. बिलकुल वा ही ढंगसुं के जैसे पद्मनाभदासके छोला अरोगवेकी ठाकुरजीको इच्छा भयी. और जा बखत गिरिधरजीने छप्पनभोग धर्यो वा बखत मथुराधीशजीके मुखारविन्दपे प्रसन्नताके भावके दर्शन नहीं भये. जब श्रीगिरिधरजीने बिनती करी के ''आपके मुखारविन्दपे प्रसन्नता नहीं झलक रही है. कारण क्या है?'' तो मथुराधीशजीने आज्ञा करी के ''पद्मनाभदासजीके छोलाकी याद आ रही है''. सो मथुराधीशजीकु आजकी तारीख तक पद्मनाभदासजीके भावसुं छोला धरे जायें हैं. तो या बातकु ध्यानसुं समझो के ठाकुरजी भक्तिके भूखे हैं, सामग्रीके भूखे नहीं हैं. अपनने गलतीसुं समझ लियो के ठाकुरजी सामग्रीके भूखे हैं करके अपन भिखारीपनो करके गाममें मांगते फिरे हैं के लाओ हमकु ये सामग्री ठाकुरजीकु धरनी है, लाओ वो सामग्री धरनी है. तुम अपने हृदयसु पूछो के भक्तिसुं तुम्हारे ठाकुरजीकु तुम क्या धर रहे हो. तुम भक्तिसुं ठाकुरजीकु जो भी धर रहे हो वो ही तुम्हारे ठाकुरजीकु भा रह्यो है. गामसुं भीख मांगके अगर तुमने ठाकुरजीकु धर्यो भी तब भी ठाकुरजीकु वो नहीं भावे है, नहीं भावे है और नहीं ही भावे है. बात केवल इतनी ही नहीं है, ठाकुरजी वाकु अरोगें ही नहीं है. बिलकुल नहीं आरोगे हैं. ठाकुरजीके सामने धर्यो भयो होय तब भी वो सब अनप्रसादी ही है, असमर्पित ही है. या बातकु दृढतासुं समझो. पर ये बात समझमें कब आयेगी के जब तुम्हारो भाव ठाकुरजीके प्रति भक्तिको होयगो. जब तुम ठाकुरजीकी सेवा प्रतिस्पर्धासुं नहीं करते होगे, जब तुम ठाकुरजीकी सेवाको गामके सामने प्रदर्शन नहीं करते होगे तब ये भाव तुम्हारेमें प्रकट होयगो के मेरो ठाकुरजी भक्तिसुं धरी भई मेरी चीजन्को शौखीन है. और वो जब तुम अपने ठाकुरजीकु धराओगे तब वाकु मजा आवे है. या बातकु समझवेकेलिये तुम्हारे दिलमें भक्ति होनी आवश्यक है. याकेलिये तुम्हारे पाकिटमें पैसाकी आवश्यकता नहीं है. हृदयमें भक्तिकु भरपूर करो पाकीट भले खाली होयगी तो चलेगो. ये बात श्रीलालूभट्टजी यहां समझा रहें है ''तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः''.

प्रभु आवश्यकतावश भोग नहीं करे हैं :

कलके प्रकरणमें प्रभुने व्रजलीलामें जो मृत्तिकाको भक्षण कियो और वासु जो सिद्धान्त फलित होवे है वाको अपनने विचार कियो के प्रभु भूखके कारण अथवा आवश्यकताके कारण कोई चीज स्वीकारें या अरोगें नहीं हैं. पर वस्तुके भक्तिभावसुं समर्पित होयवेके कारण वाकु प्रभु स्वीकारे हैं ''पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति, तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मन:''. तो सेवामें जब तक

ये भाव अपनकु दृढ नहीं होवे के प्रभुकी अपन जो सेवा कर रहे हैं वो प्रभुकी आवश्यकता नहीं है पर अपनकु समर्पण करवेकी आवश्यकता है तब तक अपनकु भगवत्सेवा करवेमें अपनो अहम् भक्तिभावोचित कोमल नहीं हो पायगो. क्योंके एक स्वाभाविक बात है के कोईकी कछु आवश्यकता है और वो आवश्यकता यदि अपन पूर्ण कर रहे हैं तो वा बातको अपनो अहङ्कार अपनेमें बढ़नो है, बढ़नो है, और बढ़नो ही है. और दूसरेकी आवश्यकता नहीं है वैसो कछु काम यदि अपन कर रहे हैं तब तो काम करवेके अपने हेतु दो ही हो सके हैं : या तो अपनो कर्तव्य है या फिर अपनो सक्हे है. वाकी आवश्यकता होय के नहीं पर अपनो सक्हे है यालिये अपन कर रहे हैं. याहीलिये पुराने जमानेमें एक नियम हतोह्न ये सब बहुत आदर्श बातें है. ऐसी बातें के आज अपनी जो जीवनशैली है, आजकी अपनी जो मानसिकता है वाके साथ यदि अपन तुलना करें तो अपनकु बिलकुल ऐसो ही लगे के ''किसी जमानेमें भगवान् बुद्ध हुवे थे और किसी जमानेमें सम्राट अशोक हुवे थे और किसी जमानेमें चन्द्रगुप्त हुवे थे'' ऐसी इतिहासकी ही कथा लगे. वो सब कथाएं जीवनके यथार्थकी कथा, आजकी कथा अपनकु नहीं लगे. वैसी ही एक कथा आपकु बता रह्यो हुं ह्नप्राचीन कालमें ब्राह्मण दान लेवेसुं कतराते (सङ्कोच करते) हते. और जो ब्राह्मण दान लेतो वाकु दान लेवेकी दक्षिणा और दी जाती हती. ऐसे भावसुं के भई आपने दान स्वीकार्यो ये हमारे उपर आपने बड़ो उपकार कियो. अर्थात् देनेवालो तो अपनी आवश्यकतासुं देतो हतो पर लेनेवालो अपनी आवश्यकतासुं नहीं लेतो हतो.

मैं मिथिलाके जा गांवसुं किशनगढ़ आयो वा गांवमें एक शङ्कर मिश्र नामके विद्वान भये. श्रीमहाप्रभुजीके ही कालमें वो जन्मे हते. वे श्रीमहादेवजीके अवतार हैं ऐसी वहांके लोगन्की भावना है, इतिहास भी है. उनके पिताको नाम भवनाथ मिश्र हतो. शङ्कर मिश्र जब पांच बरसके हते तबसुं ही बहुत बड़े विद्वान हो गये हते, जैसे अपने श्रीमहाप्रभुजी भये वाही ढंगसुं. एक दिन मिथिलाके राजाने उनकु संस्कृतमें बात करते देख्यो तो वाकु बड़ो आश्चर्य भयो के इतनो छोटो बच्चा ऐसे संस्कृतमें बातें कैसे कर रह्यो है? मिथिलाके राजा पिछले सातसो-आठसो सालसुं लेके अभी तक ब्राह्मण ही होते आय हैं. तो उनने वा बालककु बुलायके कछु पूछ्यो, बालकने कछु जवाब दियो. वापेसुं राजाने प्रसन्न होयके कही के ''अरे ये बालक तो बड़ो विद्वान है, याकु खजानेमेंसुं जितनी चहिये उतनी सोनेकी अशर्फियें दो''. शङ्कर मिश्र तो वा बखत पांच बरसके बालक हते. उनके कपड़ाकी झोलीमें बड़ी मुश्किलसुं पचास अशर्फीयां आयीं. जब उन पचास अशर्फीन्कु लेके वो अपने पिताके पास गये तब उनने कही के ये तेंने कहा पाप कियो? मेरे घरमें तु या तरहसुं असर्फी ले आयो? ब्राह्मण कैसे होते हते वाकी बात बता रह्यो हुं. तब पिताने कही के अब तो मोकु या घरमें भी नहीं रहनो है के जामें ऐसो बालक पैदा भयो होय. ऐसे कहके वो तो वाही दिन घर छोड़के गङ्गाजीके किनारे चले गये. बिचारे

शङ्कर मिश्र तो बालक हते. उनने राजाके पास मांग्यो तो हतो ही नहीं, राजाने प्रसन्न होयके दियो हतो. परन्तु इन सब बातन्को खुलासा शङ्कर मिश्र पिताके डरके कारण कर नहीं पाये. अब उनकी पत्नीको वारा हतो. पत्नीने बिचार्यो के जा अशर्फीन्के कारण पति घर छोड़के चले गये वा अशर्फीन्कु लेके अपन क्या करेंगे? तो जब शङ्कर मिश्र जनमे हते तब दायीकु देवेके भी पैस उनके पास नहीं हते. यासूं वा बखत दाईकु उनने कही हती के जा दिन ये कुछ कमाके लायगो वा दिन मैं तोकु पैसा दउंगी. तो वो अशर्फीयां उनने दायीकु बुलाके देदी. अब देखो, दायी तो कोई ऊंचे ब्राह्मण जैसे तबक्काकी होती नहीं हती, बहुत नीचे तबक्काकी ही होती हती. फिरभी जब वा दायीने सुन्यो के भई जा अशर्फीन्के कारण इनको पिता ही घर छोड़के चल्यो गयो वा अशर्फीन्कु लेके मैं क्या करुंगी? तो वाने वो अशर्फी अपने उपयोगमें नहीं लेके वासु एक तालाब खुदवा दियो जो अभी भी वहां है; मैं वाकु देखके आयो हूं. तो देखो या तरहको ब्राह्मणत्व हतो एक जमानामें. ये इतिहासकी कथा है, आजकी कथा नहीं है. आजतो मांगे नहीं तो ब्राह्मण नहीं कहवावे ये स्थिति हो गई है. अस्तु.

अहङ्कारसूं करी भई सेवा निष्फल :

समझवेकी बात ये है के जा दिन अपने मनमें ऐसो भाव जग्यो के ठाकुरजी अपनसुं सेवा स्वीकार रहे हैं वो ठाकुरजीकी आवश्यकता है और अपनेद्वारा करे जाते समर्पणकु प्रभु सनेहवश नहीं स्वीकार रहे हैं तब निश्चित समझो के अपनो मन - अपनो अहङ्कार भक्तिके लायक नहीं रह जायगो. तब अपनो समर्पण दान-दाता, दानवीर शेठके जैसो हो जायगो; अनाथालय चलानेवाले ऑफिसरन्के जैसो हो जायगो. वा तरहके अहङ्कारसुं यदि सेवा करी तो क्या और सेवा नहीं करी तो क्या? कछु अन्तर नहीं पड़ेगो.

यासुं ही श्रीलालूभट्टजी समझा रहे हैं के ये मृद्भक्षणकी लीलासुं सेवाकर्ताकु ये बात समझनी चहिये के जो भी कछु मैं कर रह्यो हुं वो प्रभुकी आवश्यकतासुं नहीं पर मैं यदि प्रभुकु समर्पण नहीं करुंगो तो मेरो जीवन असमर्पित रहेगो. मैं प्रभुकु समर्पण नहीं करुंगो तो मेरो सनेह कहां टीकेगो ये सिद्धान्त या लीला और सेवा में प्रतिफलित हो रह्यो है.

सनेहकी सिद्धावस्थामें माहात्म्यज्ञान बाधक :

अब श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के प्रभुने जब मृत्तिकाको भक्षण कियो वाके बाद श्रीयशोदाजीने प्रभुकु अपनो मुखारविन्द खोलवेको कह्यो के मट्टी खायी वो दिखाओ. जब प्रभुने अपनो मुखारविन्द खोलके दिखायो तब मुखमें मृत्तिकाके बजाय सारे ब्रह्माण्डको श्रीयशोदाजीकु दर्शन भयो. प्रभुकी या

लीलाको सेवामें क्या स्वरूप है वाकु श्रीलालूभट्टजी अब समझा रहे हैं.

जब प्रभुने अपनो मुखारविन्द खोलके दिखायो तब प्रभुके मुखमें सारे ब्रह्माण्डको दर्शन करके श्रीयशोदाजी डर गयीं. क्योंके एक बात सच्ची है के जब अपन कोईको माहात्म्य मानें तब वो अपनकु ऊंचो लगे और अपन अपने आपकु नीचो समझें. ये ऊंचे और नीचे को भाव सक्नेहमें बाधक हो जाय है. ऐसे ही प्रभुके माहात्म्यके ज्ञानके कारण अपनकु प्रभुसुं दूरीको अनुभव होयगो.

परन्तु आपकु याद होय तो मैनें अपने प्रवचनके आरम्भमें आपकु ये बात समझायी हती के निर्गुणभाव केवल सक्नेहको भाव नहीं है; निर्गुणभाव केवल प्रभुके माहात्म्यको भाव नहीं है परन्तु प्रभुके माहात्म्यके साथ प्रभुसुं सक्नेह करवेको भाव निर्गुणभाव है. और या निर्गुणभावके अन्तर्गत तामसभाव, राजसभाव, सात्विकभाव सब आ सके हैं. ' ' चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा, षड्भिर् विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम'' में ये ही बात समझायीॠपरिशिष्ट देखोॠअ है.

पुष्टिभक्तिमार्गीय सेवा सर्वभावसूं :

कई लोग यों समझे हैं के पुष्टिमार्गमें केवल बालभावकी सेवा है. ये बेवकूफीकी बात है. उनकु पुष्टिमार्गकी समझ नहीं है यालिये ऐसी बकवाद करे हैं. अपने यहां प्रायः सब ठाकुरजीन्के स्वामिनीजी बिराजे हैं. यहां (किशनगढ़के) किलामें भी श्रीकल्याणरायजी बिराजे हैं तो उनके भी स्वामिनीजी बिराजे हैं, वे दर्शन नहीं देवे हैं, परदामें बिराजे हैं. ये बात ओर है के को स्वामिनीजी परदामें बिराजते होवे हैं, को सामने बिराजते होवें. कामवनमें श्रीमदनमोहनजीकी दोनों स्वामिनीजी परदामें नहीं बिराजे हैं. कांकरोलीमें श्रीद्वारकाधीशजीके स्वामिनीजी परदामें बिराजे हैं. श्रीगोकुलनाथजीके दो स्वामिनीजी परदामें नहीं बिराजे हैं, बहार ही बिराजे हैं. तो समझवेकी बात ये है के अपने यहां के सेवा प्रकारमें श्रीठाकुरजीके संग श्रीस्वामिनीजी भी होवे हैं, श्रीयशोदाजी भी होवे हैं, श्रीनन्दरायजी, सखा, दास-दासी भी अपने यहां होवे हैं. तो अपन देख सके हैं के अपने यहां सख्यभाव, दास्यभाव, माधुर्यभाव, वात्सल्यभाव, परमात्म-आत्मभाव, सारे भावन्की सेवा है :

' ' सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः,
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन''.

सर्व भावन्सुं अपन सेवा करे हैं, को बालभावकी ही सेवा अपने यहां होवे है ऐसी को बात नहीं है. एक बात ध्यानसूं समझो के श्रीठाकुरजीकु अपन हिंडोरा झुलावें वो बालभाव कहां है? अपने यहां यदि केवल बाल भाव ही होतो तो श्रीठाकुरजीकु केवल पलनामें ही झुलानो चहितो हतो, हिंडोला क्यों झुलानो चहिये? शरदपूर्णिमाके दिन अपने यहां सेवाको कितनो बड़ो प्रकार है वो बालभाव कहां है वा

दिन रात्रिकी सेवाको जो प्रकार है वो माधुर्यभावकी सेवा है. जन्माष्टमीके दिन अपन श्रीठाकुरजीकु पलना भी झुलाव हैं, यशोदाजीके भावसुं. तो सोचो, कौनसो भाव अपने यहां नहीं है. ठाकुरजीके आगे अपन गेंद, छड़ी, चौगान भी रखे हैं, सख्यभावसुं. तो कौनसे भावकी सेवा अपने यहां नहीं है श्रीठाकुरजीकु अपन दण्डवत् प्रणाम भी करे हैं, दास्यभावसुं. तो अपनो दास्यभाव भी है. और होलीके दिन ठाकुरजीकी गाली भी अपन गावे हैं : ' 'हरि कारो री हरि कारो री, हरि दो बापन बीचवारो री, तुम आवो री तुम आवो री हरिजुकों गारी सुनावो री''. तो सख्यभाव भी अपनो है. कौनसो भाव ठाकुरजीके साथ अपनो नहीं है सारे-के-सारे अपने भाव ठाकुरजीके संग हैं. पर वो सारे-के-सारे भाव अपनकु ठाकुरजीके साथ कौनसे भावके अन्तर्गत निभाने हैं? निर्गुणभावके अन्तर्गत.

अर्थात् वो परमात्मा है और मैं वाकी आत्मा हूं. मैं आत्मा हूं वो मेरो परमात्मा है. जैसे एक मकानमें क कमरा होवें. खावेको भी कमरा होवे, सोवेको भी कमरा होवे, बैठवेको भी कमरा होवे, खेलवेको भी कमरा होवे, रसो बनावेको, नहावेको ... सब तरहके कमरा हो सके हैं. ऐसे अपनो ये निर्गुणभाव के मैं आत्मा हूं प्रभु मेरी परम आत्मा है. या आत्म-परमात्म भावके तहद पुष्टिमार्गमें दास्यभाव भी है, सख्यभाव भी है. अर्थात् अपन वाके दास भी हैं, अपन वाके सखा भी हैं. वात्सल्यभाव भी है नन्द-यशोदाको और अपनो वाके साथ माधुर्यभाव भी है. ऐसे ही अपनो वाके साथ गुरुभाव भी है. सारे के सारे भाव वाके साथ अपने हैं.

यहां कोके मनमें शङ्का हो सके है के इतने सारे भावनूसुं प्रभुकी सेवा कैसे सम्भव है? एक भावसुं दूसरो भाव विरोधी है. अर्थात् अपन यदि दास हैं तो सखा नहीं हो सके हैं. सखा हैं तो दास नहीं हो सके हैं. दास हैं तो वाके पिता नहीं हो सके हैं, पिता हैं तो वाके दास नहीं हो सके हैं. तो समझो के लोकमें ये सारे भाव विरोधी होते भये भी आत्म-परमात्म भावमें ये सारे भाव सम्भव हो सके हैं.

एक साधुकी थाली चुर ग. साधुने फरियाद लिखवा. फरियादमें वाने डफली, हथियार, खावेको बर्तन और बहुत कछु चोरी हो जावेको लिखवायो. राजाने कही के खोजो चोरकु. थोड़े समयमें चोर पकड़ा गयो. वाकी जमके पिटा भ. जमादारने कही के साधुबावाकी सब चीजें निकालो. तो चोरने कही के सौगंद खाके कहुं हूं के मैंनें एक ही चीज चोरी है. जमादारने कही के एक नहीं साधुने फरियादमें इतनी सब चीजें लिखवा हैं. वा बिचारेने खुब पिटा होयवेपे भी एक ही चीज चोरवेकी बात स्वीकारी. जब साधुकु वो थाली बता तो साधुने कही के मोकु तो मेरी सब चीजें मिल ग. सबकु बड़ो आश्चर्य

भयो. तब साधुने कह्यो के मैं जब खातो तब ये थाली हती, सोतो तब तकीयाके काम आती, गातो तब डफलीको काम देती. वस्तु तो एक ही हती पर काम सब करती. यासुं मैनें चारी ग वस्तुमें इतनी सब चीजें लिखवां हती. अब थाली मिल ग तो सब चीजें भी मोकु मिल गं. ऐसें अपनो एक प्रभु अपनकु मिल जाय तो अपनो स्वामि, अपनो सखा, अपनो बेटा, बाप, भा, गुरु सब कछु मिल जाय. और यदि एक प्रभु यदि खो जाय तो सब कछु खो जाय है. तो समझो के ये आत्म-परमात्म भाव ऐसी वस्तु है के वामें ये सब सम्भव है. और यदि केवल दासभाव मानके चलेंगे तो वो सखा नहीं हो सकेगो और केवल सखा मानके चलेंगे तो अपन दास नहीं बन सकेंगे. ऐसे ही यदि माधुर्यभाव मानेंगे तो बालक नहीं रह जायगो और बालभावसुं भजेंगे तो माधुर्यभाव कैसे करेंगे. तो ये अपने पुष्टिमार्गको मुख्य रहस्य है या बातकु समझनो चहिये के अपन प्रभुको सर्वभावसुं भजन करे हैं.

सर्वभावसुं भजन होयवेके कारण सर्वभावमें वात्सल्यभाव भी अन्तर्भूत होयवेसुं अपने यहां प्रभुके प्रति ये जो बात कही गयी है वो सब उचित ही है के प्रभुकु भूख लगे है, प्रभु अपने अरोगाये बिना अरोगें नहीं हैं, प्रभु अत्यन्त परवश हैं इत्यादि. पर साथमें अपनकु निर्गुणभावकु भूलनो नहीं चहिये के दास हायवेके कारण अपनेमें समर्पणको भी भाव होनो चहिये. समर्पणके भावसुं प्रभु अरोगे हैं. प्रभु अपनी आवश्यकता भी प्रकट करे हैं तो अपन प्रभुके प्रति समर्पित हैं यालिये. यदि प्रभुके प्रति अपनो समर्पणको भाव नहीं है तो अपनेसु प्रभुकु को आवश्यकता भी नहीं है. अपन प्रभुकु पौढ़ानो चाहे हैं करके (यासूं) प्रभुकु पौढ़वेकी आवश्यकता है. अपन प्रभुकु भोग धरनो चाह रहे हैं करके प्रभुकु भोग अरोगवेकी आवश्यकता है. अपन प्रभुकु शृङ्गार धरानो चाहे हैं करके प्रभुकु सजवेकी आवश्यकता है. तो ये बात ध्यानसुं समझो के अपने समर्पणके भावसुं प्रभुमें आवश्यकता पैदा होयगी. प्रभुकी आवश्यकताके कारण हम समर्पण कर रहे हैं ऐसो भाव यदि अपने भीतर पनप्यो तो ऐसो अहङ्कार भक्तिके लायक नहीं रह जायगो. अपने अहङ्कारकु भक्तिके लायक बनानो होय तो वाको कोमल होनो आवश्यक है. वामें कभी भी ऐसा भाव नहीं जगनो चहिये के प्रभुकु आवश्यकता है करके मोकु कछु सेवा करनी है.

भक्तभावाधीन भगवान् :

यहां जरा ध्यानसु समझो के यशोदाजीको ऐसो अहङ्कार हो सके है; अथवा को सखाको अहङ्कार ऐसो हो सके है के मेरो सखा कष्टमें है, मैं वाकी सहायता नहीं करुंगो तो कौन करेगो? मांको ऐसो अहङ्कार हो सके है के मेरो बालक भूखो है, मैं वाकु दूध नहीं पीवाउंगी तो कौन पीवायगो? सखा और मां के अहङ्कारके तहद उन-उनको वैसो भाव ठीक भी हो सके है, वामें को बुरा नहीं है. पर अपने यहां केवल बालभावकी सेवा नहीं है, अपने यहां बालभावकी भी सेवा है. बस, या बातको

अन्तर समझो. अपने यहां केवल किशोरभावकी सेवा नहीं है जैसे निम्बार्क अथवा चैतन्य सम्प्रदायमें है. अपने यहां किशोरभावकी भी सेवा है. अपने यहां केवल स्वामिभावकी सेवा नहीं है क्योंके केवल स्वामी मानो तो वाकु होरीके दिनन्में गाली केसे दे सकेंगे? पर अपन गारी गा सके हैं और अपनी गायी भयी गारी प्रभु सहन भी कर सके हैं. सेवक-स्वामी भावसुं वो गाली प्रभु सहन नहीं करे हैं, सख्यभावसुं सहन करे हैं. प्रभु भी बिचारते होंयगे के भ होरीमें गारी नहीं देगो तो कब देगो

हम बनारस गये हते तब वहां हमने ये लीला प्रकट देखी हती. संकरी गलीमें एक आदमी यहांसुं आतो होय, एक आदमी वहांसुं आतो होय. दोनों गन्दी-गन्दी गाली बोलते भये आते होंय. अपनकु लगे के जब आपसमें मिलेंगे तब छुरा-चक्कु चल जायेंगे. अपन सोचें के अब महाभारत शुरू होयगी ''पाञ्चजन्यं हृषिकेशो देवदत्तं धनञ्जय'' ... पर जैसे पास आवें सो ही एक दूसरेसुं गले मिल जायें. वहां की गालीकी कल्चर् ही ऐसी है. तो समझो के ये बात कब सम्भव है? अति सख्यभावमें. आजकलके लोग याकु समझे नहीं हैं या लिये शादी-ब्याहमें भी फिल्मी गाना बजाते रहें. बाकी शादी-ब्याहमें अपन गाली गाते हते. वाके पीछे एक दूसरेकु नीचो दिखावेको भाव नहीं हतो. मूल भाव ये हतो के समधी-समधन दोनों एक-दूसरेकु सख्यभावसुं देखते हते. आजकल तो दहेजके भावसुं, लूंट-खसोटके भावसुं एक-दूसरेकु देखें करके गाली गावें तो बुरो लग जाय है. बाकी पुराने जमानेमें गाली गानो अपने सख्यभावको एक इज़हार हतो.

निर्गुणभावमें अनेक भावन्को सञ्चरण :

सेवक-स्वामी भावसुं गाली-गलौच नहीं हो सके है. पर अपन प्रभुके साथ गाली-गलौच भी कर सके हैं. ये अपने निर्गुणभावमें आतो भयो एक ऋतु परिवर्तनके जैसो है. जैसे एक सालमें ठण्डी, गरमी, बरसात, वसन्त, शिशिर आदि सारी ऋतुन्को अनुभव होतो होवे है ऐसे अपने प्रभुके साथ अपने सारे भाव ऋतुचक्रकी तरह निरन्तर चलते रहे हैं ये अपने भक्तिको प्रकार है. बस एक गरमी ही चलती रहे, अथवा केवल ठंड ही चलती रहे के बरसात या बसन्त ही चलती रहे वा तरहको सम्बन्ध प्रभुके साथ अपनो नहीं है. जैसे एक प्रसिद्ध श्लोकमें कह्यो है ''त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव, त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव''. ऐसे तरहको को भाव अपने यहां है. या श्लोकमें तो थोड़े ही भाव गिनाये हैं, अपने यहां तो वासुं भी अधिक भाव स्वीकृत भये हैं. तो इन सब बातन्को जब अपन विचार करें तब अपनकु ये बात समझमें आयगी के समर्पण भावके कारण प्रभु अपने समर्पणको अङ्गीकार कर रहे हैं. प्रभुकु आवश्यकता है करके अपन प्रभुकु समर्पित करे हैं ऐसो भाव मनमें जगते ही अपनो अहङ्कार भक्तिके लायक नहीं रह जायगो.

सस्नेह और माहात्म्य की समतुला :

इन सब बातनूकु जब अपन समझेंगे तब प्रभुको माहात्म्यज्ञान अपने भीतर बढ़ेगो. माहात्म्य बढ़ेगो तो वाकु पाछो बेलेन्स भी करनो पड़ेगो. ये बात बिलकुल उतनी ही नाजुक है जितनी रोटी या पापड़ कु सेकनो. रोटी या पापड़ कु आंचपे रख दोगे तो जल जायेंगे, नहीं रखे तो कच्चे रह जायेंगे. यालिये उनकु निरन्तर उलट-पुलट करते रहनो पड़े है. निरन्तर उलट-पुलट करते रहें तो वो बराबर सिकेंगे. ऐसे अपनकु अपने सारे भावनूकु प्रभुके साथ उलट-पुलट करते ही रहनो पड़ेगो. तब जाके अपनो निर्गुणभाव प्रभुके साथ फिर दृढ हो सकेगो. ये बात दृढतासुं समझमें आयेगी तो अपनकु ये बात भी समझमें आयगी के श्रीयशोदाजीकु प्रभुने अपने मुखारविन्दमें ब्रह्माण्डके दर्शन कराये तब श्रीयशोदाजी घबड़ा गं के अरे यामें तो कछु लफड़ा है. वो क्यों घबड़ा ग? क्योंके उनको वात्सल्यभाव हतो. ऐसे अपनकु प्रभुके माहात्म्यसुं घबड़ानो क्यों नहीं है? क्योंके अपनो केवल वात्सल्यभाव नहीं है; अपनो वात्सल्यभाव भी है. यासूं अपन प्रभुको माहात्म्य भी स्वीकार लेंगे और प्रभुकु बालक भी स्वीकार लेंगे. अपन प्रभुको माहात्म्य भी स्वीकार लेंगे और प्रभुकु दो गाली भी दो सुना देंगे. प्रभुकु गाली भी सुना देंगे और प्रभुकु दण्डवत् प्रणाम भी करलेंगे. याहीलिये होलीमें अपने यहां बड़ो सुन्दर क्रम रख्यो है के जब प्रभुकुं गाली सुनायी जाय है तब श्रीठाकुरजीके चरण ढंक दिये जाय हैं. मुखारविन्दकु देखके गाली दो. और जब खेल खिलालो फिर ठाकुरजीके चरण खोलदो. चरण दीखे तब पाछी दण्डवत् लगा दो. ये वो साधुबावाकी थाली जैसी बात है ये ध्यानसुं समझो. अपन पुष्टिजीव यदि खो गये तो श्रीठाकुरजी भी साधुबावाकी तरह कम्पलेइन् करेंगे के मेरो दास खो गयो, मेरो बाप खो गयो, मेरो सखा खो गयो, मेरो प्रिय खो गयो, मेरो बेटा खो गयो. ऐसे ही यदि अपनसुं भी कभी श्रीठाकुरजी खो गये तो अपनकु भी ये ही कम्पलेइन् करनी के भ हमारो सबकछु खो गयो. और वो एक मिल गयो तो अपनकु ये ही माननो के अपनो सबकछु मिल गयो. और पुष्टिजीव यदि प्रभुकु मिल गये तो प्रभु भी ये ही माने हैं के उनकु सब कछु मिल गयो. क्योंके श्रीमहाप्रभुजीने अपनकु या तरहसुं भक्ति करवेकी बता है. अपन एक प्रभुकु मिलें तो प्रभुकु भी सन्तोष हो जाय के भ हां मोकु सबकछु मिल गयो. बाकी तो लीलामें तो जो मिल्यो हतो वो ही मिल्यो हतो; एकके मिलवेसुं सबकछु कोकु नहीं मिल्यो. यशोदाजी मिले तो प्रभुकु मां ही मिली सखा नहीं मिल्यो. सखा मिले तो सखा ही मिले मां थोड़ी मिली. सखाकेलिये भागवतमें कह्यो है ''उवाह भगवान् कृष्ण श्रीदामानं पराजितः''. भगवान् और श्रीदामा खेल रहे हते वामें भगवान् हार गये. शर्त ये हती के जो हारे वाके उपर जो जीते वो सवारी करे. तो भगवान्ने कही ''चल भई कर अब सवारी मेरे उपर''. तो श्रीदामा भगवान्पे सवार हो गये. ये बात यालिये सम्भव भई के श्रीदामा केवल सखा हतो. अपनेलिये ये बात सम्भव नहीं है. अपन श्रीठाकुरजीके सखा भी हैं और सेवक भी

हैं. प्रभुसुं अपनो सम्बन्ध अनेक तरहको है :' ' तेरे मेरे नाते अनेक''.

रूढ भावमें अन्य भाव विक्षेपजनक :

तो ये बात अपनकु ध्यानसुं समझनी है के लीलामें माहात्म्यज्ञान रूढ वात्सल्यभावके कारण यशोदाजीकु घबड़ा दे है. लीलामें माहात्म्यज्ञान रूढ सख्यभावके कारण अर्जुनकु घबड़ा दे है. गीतामें वर्णन आवे है के जैसे ही विराटस्वरूपके दर्शन भये और अर्जुन गिड़गिड़ावे लग्यो, माफी मांगली के भई क्या पता हती मोकु के तु इतनो विराट है. मैं तो अभी तक तोकु अपनो दोस्त समझ रह्यो हतो. अपनो सगो-सम्बन्धी समझ रह्यो हतो. भई जितनी गलतीएं भई होंय, जितनी बार तोकु दोस्तीमें हाथ-पांव लग गये होंय सबकी आज तोसुं माफी मांग रह्यो हुं. एक बात समझो, अपन ठाकुरजीकु होलीमें गाली दे हैं पर वाकी माफी नहीं मांगे हैं. दण्डवत् अवश्य करे हैं पर वो दण्डवत् माफीकी नहीं करे हैं. वो दासत्वकी दण्डवत् करे हैं. दोनों बातन्में थोड़ोसो अन्तर है. अपन दासत्वकी दण्डवत् करे हैं, दास्यभावकी दण्डवत् करें हैं. परन्तु जैसे अर्जुन कह रह्यो है के तेरे सामने सख्यभावसुं मैनें कोई गलत शब्दको प्रयोग कर दियो होय तो प्रभु मोकु माफ करदीजो. ऐसी उन बातन्की माफी अपन प्रभुसुं नहीं मांगे हैं. दास्यभावकी दण्डवत् करें, सख्यभावकी गाली भी दें. वार्तामें लिख्यो है के ' ' चलेगो के मूंड कटवायेगो'' ' ' भावत तोहे टोंडको घनो यह रांड कौन ढेढनीको जन्यो''. तो अपन तो प्रभुके साथ सख्यभावसुं ऐसी भद्दी बातें भी कर सके हैं. और फिर वाकी माफी भी नहीं मांगे हैं. जैसे गोविन्दस्वामीने भी कंकड़ मारे तो श्रीगुसांईजी नाराज हो गये. कही के ' ' ये क्या कर रहे हो उधम?'' तो गोविंदस्वामीने श्रीगुसांईजीकु येही कही के ' ' अपने बेटाकु कछु नहीं कह रहे हो और मोकु लड़ रहे हो'' तो एक बात ध्यानसुं समझो के श्रीगुसांईजीने उनकु कंकड़ मारते टोके सही पर उनसुं माफी मांगवेकी नहीं कही. गोविन्दस्वामीके पद पढ़ो तो पता चल जायगी के वो प्रभुकुं दण्डवत् भी कर रहे हैं और ककंड़ भी मार रहे हैं. तो ये सब भाव एक प्रभुके साथ अनेक सम्बन्ध निभावेके हैं. ये श्रीमहाप्रभुजीने अपनकु पुष्टिभक्तिके तहद समझायो है. भावनाको ये प्रकार इतर सम्प्रदायन्में कहीं भी या तरहसुं वर्णित नहीं भयो है जा तरहसुं अपने यहां सिस्टमेटिक् सेवामें सारो प्रकार गूंथवेमें आयो है. ओर जगह भक्तिके एक-एक भाव हैं. जो किशोरभावसुं भजे हैं वो बालभावसुं नहीं भजे हैं. पर अपने यहां ऐसो नहीं है. अपने यहां तो सर्वभाव ही मुख्य है. अब जबरदस्ती कोई अपनेपे ऐसो आरोप लगादे के तुम्हारे यहां बालभावकी ही सेवा है तो अपन क्या करसकें

जा बखत प्रभुने अपनो माहात्म्य दीखायो वा बखत श्रीयशोदाजी घबड़ा गयीं. माहात्म्य दीखवेके कारण जब श्रीयशोदाजीकु डर लगवे लग्यो तब भगवानकु अपनी माया फैलानी पड़ी. भागवतमें आवे है :

''इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः,
वैष्णवीं व्यतनोन् मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः,
सद्योनष्टस्मृतिर् गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम्''

(भाग.पुरा.१०।८।४३,४४).

या तरहसुं भगवानकु अपनी वैष्णवी माया फैलाके श्रीयशोदाजीमें फिरसुं मातृभाव उभारनो पड्यो.

श्रीयशोदाजीके जैसो अनुभव यदि अपनकु कभी होवे जावे तो अपन डरेंगे नहीं. क्योंके पुष्टिभक्तिसम्प्रदायमें सर्वभावसुं सेवा करवेको कहके अपने यहां श्रीमहाप्रभुजीने वा बातको अवकाश ही नहीं रहवे दियो है. करके अपन प्रभुको माहात्म्य स्वीकार लेंगे. माहात्म्य स्वीकारके अपन अपने प्रभुके प्रति सख्य, सस्नेह आदीके भाव खण्डित नहीं होवे देंगे. ये सेवामें वा लीलाकी अनुरूपता है.

बड़ेन्की कृपासुं भाव सिद्ध होवे है :

वाके बाद नन्द-यशोदाजीकु श्रीकृष्णमें इतनो दृढ भाव क्यों भयो वाको कारण ग्रन्थकार बता रहे हैं के श्रीनन्दरायजीकु पूर्वजन्ममें वरदान प्राप्त भयो हतो के उनके वहां श्रीठाकुरजी प्रकट होयेंगे. वाके कारण उनकु इतनो दृढ भाव प्रभुमें भयो हतो. ग्रन्थकार लिखे हैं : ''महापुरुषकृपैव कारणम् इति सिद्धान्तितम्''. यासुं वा लीलाके अन्तर्गत अपने यहां भी अपनेकु ये बात भूलनी नहीं चहिये के प्रभुके संग अपनो या प्रकारको विलक्षण सम्बन्ध श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजीकी कृपासुं सिद्ध भयो है. ये उनकी कृपाहीके कारण हो पायो है अन्यथा इतने सब भाव एक ठाकुरजीमें कैसे सिद्ध हो सकें

दधिमन्थनलीलाकी सेवासुं अनुरूपता :

आगे लीलाके क्रममें वर्णन आवे है के श्रीयशोदाजी दधीमन्थन्के समय भगवानके गुण गाती रहे हैं. वा लीलाके अनुरूप अपने यहां सेवामें क्या है वो श्रीलालूभट्टजी बता रहे हैं के जब अपने यहां सेवाको अनवसर है, जब अपन सेवा नहीं कर रहे हें, धंधा या घरको काम या नौकरी कर रहे हैं तब अपनकु भी प्रभुकु भूलनो नहीं चहिये. जा तरहसु अपन प्रभुकु याद कर सकें वा तरहसु प्रभुको स्मरण बनाये रखनो चहिये. अष्टाक्षर बोलके याद कर सकें तो अष्टाक्षर बोलके; कीर्तन गाके याद कर सकें तो कीर्तन करके; लीलास्मरण करके याद कर सकें तो लीलस्मरण करके ... प्रभुकु कभी भी भूलनो नहीं चहिये. ये बात अपनकु श्रीयशोदाजीसुं समझनी चहिये के वो जब सेवा नहीं कर रहे हते, अपनो दही बिलोते हते वा बखत भी वो भगवान्कु याद करके भगवान्के गुण गाते रहते हते.

वाके बाद भागवतमें लीलाको वर्णन आवे है के भगवानने अपने घरके दही–छाछके बर्तननकु तोड़के दही–माखन आदि सब कछु बन्दरनकु खवादियो. या लीलाकी अनुरूपता अपनी सेवामें कैसे समझनी? श्रीलालूभट्टजी या लीलाकी अनुरूपता बताते भये बहुत सुन्दर बात लिख रहे हैं के अपनने अपने घरमें जा धन–सम्पत्तिकु भगवद्भक्तिके आवेशमें इकट्ठो कियो है वा सबकु तो प्रभु तोड़–फोड़के बंदरनकु नहीं खवायेंगे. परन्तु जा धन–सम्पत्तिको संग्रह अपनने भक्तिके आवेशमें नहीं कियो है वाकु प्रभु यदि तुम्हारेपे प्रसन्न हैं तो बंदरनकु खिला देंगे. ये बड़ी मिठी बात है. ध्यानसुं समझो के जब कोई वस्तु बन्दर खाजाय, बिगाड़जाय, तोड़जाय; अर्थात् अपनो कछु नुकशान होवे तब सेवा करवेवालेकु लीलको स्मरण करके ऐसो भाव बिचारनो चहिये के वस्तु प्रभु सेवोपयोगी नहीं होयगी यालिये बन्दर खा गयो. यदि प्रभुकु रुचिकर होतो तो प्रभु ही अरोगते, बन्दर क्यों खातो? आपकु प्रश्न हो सके है के यहां 'बन्दर'को अर्थ क्या समझनो? तो समझलो के पूंछवालो बन्दर ही समझनो आवश्यक नहीं हे, बिना पूंछको बन्दर भी हो सके है. ''वानरो वा नरो वा'' वानर होय के नर होय बात एक ही है. विकल्पसु नर होय वो वानर है. तो बन्दर जब अपनो कछु नुकशान पहुंचावें तब अपनो दिल या बातकु लेके आश्वस्त रहनो चहिये के अवश्य ही वो वस्तु प्रभुकी सेवोपयोगी नहीं होयगी करके वाकु बन्दर खा गयो. ऐसे भावकु बिचारके अपने चित्तकु उद्विग्न नहीं होने देनो चहिये ये सिद्धान्त वामें स्थापित कियो. एक बात आप ध्यानसु समझो के बन्दरकु खवावेकी लीला प्रभु तभी करेंगे के जब प्रभु आपकु अपनो मानते होंयगे.

अपनेपनपेसुं एक बात याद आ रही है, हमकु एक व्यक्तिने बम्बईमें प्रवचनके बखत एक प्रश्न कियो के ''पहले तो थोड़ोसो भी अन्याश्रय करते ही प्रभु नाराज हो जाते हते, कभी सेवकपें अप्रसन्न होयके भोगकी थालीकु लात मार देते ऐसो वार्तामें आवे है. और आजकल तो गोस्वामी बालक भी अन्याश्रय करवे लगे हैं तब भी ठाकुरजी नाराज क्यों नहीं होवे हैं?''

मैनें वाकु कही के भाई ध्यानसुं समझ के अन्याश्रय करवेके कारण नाराजगी कौनके प्रति होवे? एक स्त्री एक पुरुषकु अपनो पति मानती होय ओर यदि वाको पति कोई दूसरी स्त्रीके पास जातो होय तो पतव्रीकु नाराजगी होयगी. अथवा एक पुरुष एक स्त्रीकु अपनी पतव्री मानतो होवे और वाकी पतव्री कोई दूसरे पुरुषके प्रति आकर्षित होती होय तो पतिकु नाराजगी होयगी. पर मानो के कोई एक स्त्री कोई एक पुरुषके प्रति आकर्षित होती होवे तो वामें वा पतिको क्या गयो? तो बात समझवेकी ये है के नाराजगी तब होवे है के जब अपन कोईकु अपनो मानते होवें. एसें ही बन्दरकु प्रभु तभी खिलायेंगे के जब प्रभु आपकु अपनो मानते होंयगे. तो जब प्रभु बन्दरकु खिला रहे हैं तब माननो चहिये के प्रभुने अपनेकु

अपनो मान्यो है. बन्दरकु नहीं खिला रहे हैं तो बात साफ है : प्रभु तुमसुं कह रहे हैं के तोकु जो मजा लेनी होवे सो ले वामें मेरे क्या जाय? गुजरातमें बच्चाएं आंख-मिचौनीको खेल खेले हैं वामें जैसे पण्डितलोग मन्त्र पढे ऐसे बच्चाएं भी बोलते होवे हैं के ''दाईनो घोड़ो रमतो-झुमतो छुट्टो''. तो बात समझो के ''दाईनो घोड़ो रमतो-झुमतो छूट्टो'' एसें प्रभु भी जाकु अपनो नहीं माने हैं वाकु रमतो-झुमतो छूट्टो करदे हैं.

बंदरकी बात चली है तो मैं मेरी अपनी बात आपकु सुनाउं हूं. मोकु एक बन्दरकी याद बहुत आती हती. कई बखत तो सेवामें भी याद आ जाती हती. मैं बहुत परेशान हो गयो. एक दिन मैने दो बन्दर लाके ठाकुरजीके खण्डपे सजा दिये. अभी भी रखुं हूं ठाकुरजीके सामने. अब जब याद आ ही रही है तो क्या करतो? ठाकुरजीके सामने रखवेके पीछे अब वाके कारण चित्तमें विक्षेप नहीं होवे है. वाके संग ठाकुरजीके दर्शन करवेसुं आनन्द ही आवे है.

एक दिन एक वैष्णवने मोकु बड़ी मजेदार बात बतायी. वो रोज भगवान्कु प्रार्थना करतो के ''भगवान् मोकु कष्ट देते रहीयो ताकी मैं आपकु भूलुं नहीं''. या सम्बन्धमें कुन्तीको प्रसिद्ध श्लोक है ''विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो, भवतो दर्शनं यत् स्याद् अपुनर्भवदर्शनम्'' (भाग.पुरा.१।८।२५) प्रभु उनकु कष्ट देते रहें के जासुं वो प्रभुकु भूले नहीं. प्रभुने वाकी प्रार्थना लम्बे समय तक सुनी नहीं. सुनी नहीं करके वो तो रोज-रोज प्रार्थना करतो रहेतो. एक दिन जब वो प्रार्थना करके बहार निकल्यो ओर वाकु समाचार मिले के एक्सिडेन्ट्में वाको बीस बरसको बेटा चल्यो गयो. वाने आके मोकु ये कही के ''तबसुं मेरी प्रभुमेंसु आस्था उठ गई''. मैनें वासुं कही के ''तुम इतने बरससुं प्रार्थना कर रहे हते के प्रभु मोकु कष्ट दो. ओर जब प्रभुने तुम्हारी प्रार्थना सुनली तब तुम कह रहे हो के आस्थाको उठ गयी''. तो वो कहवे लग्यो के ''मोकु क्या पता हती के ऐसो कष्ट देंगे''. तब मैनें कह्यो के तु ऐसी प्रार्थना क्यों करतो हतो के कष्ट दो. ऐसी प्रार्थना क्यों नहीं करी के ''प्रभु अपने चरणमें मेरो चित्त राखो'' जा प्रार्थनाके फलकु तुम स्वीकारने तैयार नहीं हो ऐसी प्रार्थन तुमकु करनी ही क्यों चहिये.

तो बात ध्यानसुं समझो के अपनेकु पुष्टिभक्तिके अन्तर्गत या तरहके बन्दरन्के खवावेके जो प्रसङ्ग आवे हैं वा स्थितिमें भी प्रभुमें आस्था बनाये रखनी चहिये. अपने यहां वार्तामें एक बड़ो सुन्दर प्रसङ्ग आवे है के कोई वैष्णवपे श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न भये और कह्यो के कछु मांग. तब वा वैष्णवने श्रीगुसांईजीसुं मांग्यो के ''आप ऐसो वरदान मोकु दो के मैं कभी आपसुं नाराज नहीं होउं''. ये सुनके सब लोग हंसवे लगे. लोग चर्चा करवे लगे के वरदान ऐसो मांगनो चहितो हतो के श्रीगुसांईजी मेरेपे

नाराज नहीं होवें. तब श्रीगुसांईजीने कही के नहीं, तुम सब वाकी बातकु गलत समझे हो. क्योंके कभी मैं वापे नाराज होउं ओर समझो के वाकु बुरो लग्यो तो अनर्थ हो जायगो. यासुं वाने बड़ी सावधानीसुं वरदान मांग्यो के वो कभी मेरेपे नाराज नहीं होवे. अर्थात् आप चाहे मेरेपे नाराज हो चाहे प्रसन्न रहो पर मैं आपसुं कभी नाराज नहीं होउं. मेरी भक्ति कभी खण्डित नहीं होवे. रामानुज मतके यामुनेयाचार्यने बहुत सुन्दर एक बात कही है के ''निराश कस्यापि न तावद् उत्सहे महेश आतुं तव पाद पङ्कजम्, तृषानिरस्तोऽपि शिशुस्तनन्धयो न जातु मातुश्चरणौ जिहासति''. वो कहे हैं के तु मोकु ऐसे कहे के ''निकल जा मेरे सामनेसुं'' फिर भी हे महेश तेरे चरण छोड़वेकु मेरो मन उद्यत नहीं होवे है. बोले ऐसो क्यों? तो कह रहे हैं के बच्चा मांकु तंग करतो होवे और मां बच्चाकु मारे, वाकु दूर जावेको कहे तब भी दूध पीवेवालो बच्चा मांकु छोड़े नहीं है. ऐसे ही ''तु भले मेरेपे नाराज होवे, थप्पड़ मारे तब भी मैं तेरो पीछा नहीं छोडूंगो''. ऐसो जो प्रभुके प्रति अपनो भाव है वो अपने अहङ्कारकु, अपने ममताकु प्रभुके प्रति भक्तिभावोचित कोमल बनाये रखवेको भाव है. ओर ये भाव अपनकु रहेनो चहिये.

दामोदरलीला :

ये भाव जा बखत रहेगो तब श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के दामोदरलीलाको प्रसङ्ग आयगो. जब श्रीयशोदाजीने देख्यो के प्रभु कोई बात माने ही नहीं हैं, निरन्तर ऊधम ही करते रहे हैं तब उनने प्रभुकु रस्सीसुं बांधनो चाह्यो. रस्सी खोजके लाये. प्रभुकुं रस्सीसुं बांधवे लगे. पर प्रभु रस्सीसुं बंधे ही नहीं. देख्यो तो रस्सी दो अङ्गुल जितनी छोटी रही. दूसरी बड़ी रस्सी लाये. फिरसुं बांधवेको प्रयास कियो तो वो रस्सी भी दो अङ्गुल जितनी छोटी पड़ी. ऐसे करते-करते घरमें जितनी रस्सी हती उन सबनकुं जोड़के प्रभुकुं बांधवे गये तब भी रस्सी दो अङ्गुल जितनी छोटी ही पड़ती. अब तो श्रीयशोदाजी थक गये. दुःखी हो गये. प्रभुने जब देख्यो के माता श्रमित हो गई है तब कृपा करके आप रस्सीमें बंध गये.

या लीलाकी सेवासुं अनुरूपता कैसे है? श्रीलालूभट्टजी समझा रहे हैं के जैसे यशोदाजीके अनेक उपाय करवेपें भी प्रभु उनके वश नही भये और कृपासुं ही वश भये ऐसे सेवाकर्ता भी यदि ऐसो बिचारे के मैं जितने वैभवसुं प्रभुकी सेवा करुंगो इतने शीघ्र और अधिक प्रभु मेरेपें प्रसन्न होंयगे तो ये सम्भव नहीं है. प्रभु तो केवल भक्तिसुं ही वश होवे हैं, साधनाभिमानसुं नहीं.

यमलार्जुनको उद्धार :

जब श्रीयशोदाजीद्वारा प्रभु उलूखलसुं बंध गये तब निश्चिन्त होयके श्रीयशोदाजी गृहकार्य करवे लगीं. प्रभुने जब देख्यो के अब यहां कोई नहीं है सो ही आप आंगनमें अर्जुनके जो दो वृक्ष हते वाके

बीचमें उलूखलकुं घसीटते भये पधारे. ये दो वृक्ष पूर्वजन्ममें यक्षराज कुबेरके दो पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव हते. उनकुं अपने सौन्दर्य तथा धन-सम्पत्ति को बड़ो अहङ्कार हतो. अहङ्कारके कारण उनसुं भगवद्भक्त नारदजीको अपराध हो गयो. नारदजीने उनके अहङ्कारकुं दूर करवेके आशयसुं वृक्ष बन जावेको शाप दियो हतो. साथ ही साथ यह भी कह्यो हतो के सो दिव्यवर्ष बीत गये पीछे उनकुं प्रभुके दर्शन होंयगे तब वृक्षदेहसुं मुक्त होयके अपने लोकमें जाके प्रभुभक्ति करेंगे. प्रभुकुं भक्त प्रिय हैं. अपने भक्त नारदजीके वचनकुं सत्य करवेकेलिये प्रभु वो दो अर्जुन वृक्षके बीचमें पधारे. जैसे ही आप वृक्षन्के बीचमें पधारे वैसे ही आपके सङ्ग बंध्यो भयो उलूखल दो वृक्षके बीच फंस गयो. प्रभुने जैसे ही वाकु खींच्यो वैसेही दोनों वृक्ष मूल सहित उखड़के गिर पड़े और वामेंसुं नलकूबर और मणिग्रीव निकले. दोनोंनने प्रभुकी स्तुति करी और मुक्त होके अपने लोकमें गये.

प्रभुकी या लीलापेसुं सेवाकर्ताकु भक्तिसाधनामें भगवदीयके सङ्गकी महत्ता समझनी चहिये. जीवमें अनेक दोष होवे हैं. अपने दोष अपनकुं नहीं दिखलाई देवे हैं. भगवदीयजन अपने दोषन्कुं दिखाके वाके निवारणको उपाय बतावे हैं.

प्रभुकी भक्तवश्यता :

सेवाकर्ता जब अहङ्कारादि दोषन्सुं मुक्त हो जावे है तब वो प्रभुके भक्तपरवश स्वरूपको ध्यान करवे योग्य बने है. प्रभुकी भक्तवश्यताको वर्णन करतो भयो एक सुन्दर पद है.

> ' ' शेष महेश दिनेश गणेश सुरेश हु जाहि निरन्तर गावें,
> जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अभेद अछेद सुवेद बतावें,
> नारदसे मुनि व्यास रटें पचिहारे तोउ पुनि पार न पावें,
> ताहे अहीरकी छोहरियां छछियाभर छाछपे नाच नचावें''

इतनीसी छाछ प्रभु मांग रहे हैं ओर गोपी कहे है के ऐसे ही मुफ्तमें छाछ नहीं मिलेगी, थोड़ो नाचके दिखाओ तो मिलेगी. प्रभु कहे हैं के तो अच्छा भई तु छाछ देवे तो मैं नाचने भी तैयार हुं. अब एक बात ध्यानसुं समझो के क्या श्रीनन्दरायजीके घरमें छाछ नहीं हती? क्या श्रीयशोदाजी छाश पिवाते नहीं हते? ऐसी बात नहीं है. परन्तु जा गोपीके वहां प्रभु पधारे हैं वो छछीया भर छाछ देवेके पहले नचवानो चाह रही है ओर प्रभु नाच भी रहे हैं वाको कारण प्रभुकी छाछकी आवश्यकता नहीं है परन्तु प्रभु मेरी छाछ लेवें वो आवश्यकतासुं अधिन होके प्रभुने छछीयाभर छाछकेलिये नाच कियो है. या

बातपेसुं अपनी सेवामें भी अपनेकु ये बात समझनी चहिये के प्रभुकी आवश्यकतासुं प्रभु अपनो समर्पण नहीं स्वीकार रहे हैं पर अपने सक्हेके कारण प्रभु अपनो समर्पण स्वीकार रहे हैं. प्रभुको ऐसो सक्होधीनपनेको वर्णन भागवत करे है ' ' गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्'' (भाग.पुरा.१०।११।७).

पौगण्डलीला :

प्रभुकी बाललीलाको क्रम पूरो होके अब प्रभुकी पौगण्डलीलाको क्रम शुरू होवे है. जब प्रभुने पौगण्डावस्था अङ्गीकार करी तबसुं प्रभुने वृन्दावनमें गाय चरावे जानो शुरू कियो. शिशु, बाल, पौगण्ड, किशोर, युवा, प्रौढ ओर वृद्ध इतनी अवस्थाएं मानी जाय हैं. पौगण्ड अवस्था वो अवस्था कही जाय है के जामें बच्चाकु घरसुं बाहर निकलवेकी छूट मां-बाप देनो शुरू करें. बालककु घरसुं बाहर निकलवेकी छूट नहीं होवे है. और शिशु अवस्थाको मतलब ये है के बालक मांके पास ही रहे, अपने घरमें भी सब जगह नहीं जावे. माने (अर्थात्) मां पलनामें सुवाती होवे या अपनी गोदमें लेके घुमती रहे वो शिशु अवस्था है. वाके बाद बच्चा जब घुटरुन चलनो शुरू करे ओर घरमें चक्कर लगानो शुरू करे वो बाल्यावस्था कहेवावे. ओर घरके बाहर निकलनो जब शुरू करे तब वो बालककी पौगण्ड अवस्था कहेवावे. तो या प्रकारसुं सेवाके क्रममें जो बालभावके अनुरूप बातें हतीं वो सब बतायीं.

अब जहांसु प्रभुकी पौगण्डलीला शुरू हो रही है वहांसुं श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के सख्यको प्रसङ्ग आयगो. आप सब जानो हो के अपन ठाकुरजीके सामने गेंद, छड़ी, चौपड़ आदि खिलौना साजे हैं. अब यहां यदि कोईके मनमें ऐसो भाव आ जावे के जो आखे ब्रह्माण्डकु खिलावेवालो है वाकु अपन कैसे खिला सकें तो मतलब ये भयो के अपनने एक ही भावकु पकड्यो, सब भाव नहीं पकड़े. यासुं अपनकु यामें यों समझनो चहिये के आखे ब्रह्माण्डकु जो खिलावेवालो है वाकु भी अपने साथ खेलवेकी कछुक आवश्यकता है. ओर या भावसुं वाके सामने यदि खिलौनाएं साजोगे तो वो आपके संग अवश्य खेलेगो.

अपने यहां ठाकुरजीके सम्मुख खण्ड-पाटपे जो खिलौनाएं साजे जाय हैं वाको बहुत सुन्दर भाव प्राचीन भावनाकारन्नें समझायो है. खिलौना आदि तीन स्तरपें सजाये जाय हैं. श्रीठाकुरजी जा सिंहासनपें बिराजे हैं वाके नीचे खण्ड साज्यो जाय है. वापे गाय, मोर, हंस आदि खिलौना साजे जाय हैं. कोई भी खिलौना कही भी नहीं साज्यो जाय है. क्यों? कारण समझो. गाय, मोर, पोपट, हंस आदिके अपने यहां भावात्मक स्वरूप सोचे गये हैं. जैसे, गाय अपनी भक्तिको खिलौना है. अपन प्रभुसुं कहे हैं के तोकु खेलनो होवे तो मेरी भक्तिसुं खेल. मोर अपनी मुक्तिको खिलौना है. अपन कहे

हैं के हमारी मुक्तिसुं हम क्या खेलें? हमारी मुक्तिसुं तो तु खेल, जैसे खेलनो होय वैसे खेल. पोपट अपनी विद्याको खिलौना है, हंस अपने ज्ञानको खिलौना है उन खिलौनान्सुं हम क्या खेलेंगे तु खेल. तो देखो, अपनी जो भी कछु ये सामर्थ्य हैं वो श्रीठाकुरजीके खण्डके प्रथम स्तरपे सजाई जाय हैं.

खण्डके दूसरे स्तरपे हाथी, घोड़ा, शेर, हिरन, बंदर आदि खिलौना सजाये जाय हैं. याको मूल कारण ये बतायो गयो है के ये सारी अपनी राजस वृत्तिएं हैं. इन राजस वृत्तिन्सुं अपन क्या खेलें प्रभुकु अपनी राजसवृत्तिसुं जैसे खेलनो होवे ऐसे खेलें. एक शायरने बहुत अच्छी बात कही है ''तोड़ो फेंको रखो करो कुछ भी दिल हमारा एक खिलौना है; कुछ न कुछ तो जरूर होना है सामना आज उनसे होना है''. ऐसे ही अपनी भक्तिकी वृत्तिसुं; भक्तिके दिलसुं, ज्ञानके दिलसुं, मुक्तिके दिलसुं, विद्याके दिलसुं, राजस वृत्तिन्के दिलसुं प्रभुकु जैसे खेलनो होवे ऐसे खेलें वा भावसुं अपन प्रभुके आगे खिलौनाएं सजावे हैं. ''तोड़ो फेंको रखो करो कुछ भी दिल हमारा एक खिलोना है, कुछ न कुछ तो जरूर होना है सामना आज उनसे होना है''. ये दोस्तीको अपनो सामना प्रभुके साथ है. यालिये अपन अपने सारे खिलौना ठाकुरजीके सामने ऐसे सख्यभावसुं सजावें हैं ओर ठाकुरजीके उपर छोड़ दे हैं के इनमेंसु जो खिलौना आपकु अच्छो लगे वासु खेलो, जो खिलौना अच्छो नहीं लगे वाकु पड्यो रहवे दो. या तरहकी अपनी समर्पणात्मक सख्यकी मनोवृत्ति है. यहां ये भूलियो मत के अपने यहां ये मनोवृत्ति केवल समर्पणात्मक सख्यकी ही नहीं है, सख्यकी भी मनोवृत्ति है.

वत्सासुरवध :

या तरहसुं अपनने बालभावके सहित अपनो सख्यभाव भी जब प्रेरित कियो तब श्रीलालूभट्टजी बहुत सुन्दर कह रहे हैं के एक दिन वृन्दावनमें सखान्के संग प्रभु जब खेल रह हते तब वत्सासुर आयो. ठाकुरजीने वा वत्सासुरको वध कियो. या लीलाकी सेवाभावनाके संग अनुरूपताको निरूपण करते भये श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के लीलमें वत्सासुरके आगमनकी तरह सेवाकर्तामें भी सख्यभावके अन्तर्गत कभी आसुरीभाव पनप सके है. तो वा वत्सासुरके वधको कार्य भी ठाकुरजीके उपर छोड़ दो.

अपने भीतर कई बखत सात्त्विक भाव होवे, कई बखत राजसभाव होवे, कई बखत तामस भाव भी आ जावे है. अपन क्योंके दुनियामें रह रहे हैं वालिये सारे भाव अपने भीतर होंयगे. उन सारे भावन्कु ठाकुरजीके सामने खेलवेकेलिये ऐसे भावसुं सजाओ के आपकु जो अच्छो लगे वासु आप खेलो जो अच्छो नहीं लगे वाकु तोड़नो होवे तो तोड़ भी दो. ये बिलकुल समर्पणको भाव है ''तोड़ो फेंको रखो करो कुछ भी दिल हमारा एक खिलौना है'' के जैसो. तो जब अपन ऐसे करेंगे तब

सेवोपयोगी अपने सारे राजस आदि भाव निर्मल हो जायेंगे.

प्रश्न : वत्सासुरको भाव समझमें नहीं आयो.

उत्तर : ठाकुरजी जब बछड़ानूकुं चरा रहे हते तब एक असुर बछड़ा बनके सब गाय-बछड़ान्के बीच आ गयो. अपने यहां कितेनक प.भ. आते होवे हैं. उनमें कितनेक तो ऐसे होवें हैं के सामान्य वैष्णव जो तिलक लगाते होवे हैं वासुं डेढगुनो मोटो तिलक वो लगाते होवे हैं. अपनी वैष्णवताको आपही दिखावा करवेवाले प.भ. बड़े खतरनाक होवे हैं. ऐसे दम्भी प.भ. वत्सासुर समान समझने. ऐसो प.भ.पनो अपने भीतर भी हो सके है. अपनकु वाकु ठाकुरजीके सामने रखनो चहिये के खेलो यासुं. पर ये सब बातें ठाकुरजीके संग अपनी दोस्तीकी है के अपन इन सारी मनोवृत्तिन्कुं ठाकुरजीके खेलवेकेलिये दे रहे हैं. ओर बिना शर्त दे रहे हैं अथवा या शर्तके साथ दे रहे हैं के खेलनो होवे तो खेलो, तोड़नो होवे तो तोड़ो, रखनो होवे तो रखो, फेंकनो होवे तो फेंको.

बकासुरवध :

याके बाद लीलामें प्रभुने बकासुरकु मार्यो. बकासुरकी तुलना श्रीमहाप्रभुजीने अपनेमें रही भई दम्भकी वृत्तिके संग करी है. 'दम्भ' माने पाखण्ड. श्रीमहाप्रभुजी समझावे हैं के दम्भ बगलाभगत जैसो है. अपन जाने हैं ''बगला भगत राम राम करें, मच्छी मिले तो हड़प करें''. बगलाकी चोंचके दो पुट होवे हैं. वाकेलिये श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के एक पुट झूठको है और दूसरो पुट लोभको होवे है. माने लोभ ओर झूठ यदि आदमीमें नहीं होवे तो आदमी दम्भ नहीं कर पावे है ये बात बताई है. माने लोभ है पर जूठ बोलवेकी शक्ति नहीं है तो आदमी दम्भ नहीं कर सके है. ओर जूठ बोलवेकी शक्ति है पर लोभ नहीं है तो आदमी क्यों दम्भ करेगो? या लिये आदमी जितनो भी दम्भ करे है वाके मूलमें बगलाकी चोंचके वो दो पुट हैं. एक जूठ बोलवेकी सामर्थ्य ओर एक लोभ है. लोभकी वृत्ति गोबर जैसी होवे है. गोबर जमीनपे पड़े तो कछु न कछु मिट्टी लिये बिना उठे नहीं है. ऐसे ही जो भी काम करनो वामें कहीं न कहीं अपनो लाभ देखनो ये मनोवृत्ति लोभकी है. आप लोगनने देख्यो होयगो के मन्दिरन्में लोग शिलालेख लिखवावें के फलाने भाईने इतने रूपैयाको दान देके ये काम करवायो. मोकु ये कभी समझ नहीं आवे है के आज तो अपनकु सब लोग जान ही रहे हैं तो ठीक है के शिलालेख पढवेवालेके सामने अपनी मूछें ऊंची हो जांय के हां देखो हमने ये करवायो परन्तु अपनी दो पीढीके बाद जब कोई वा शिलालेखकु बांचेगो तब कौनकु पता चलेगी के ये कौनको शिलालेख है तब फायदा क्या भयो? परन्तु ये सब जानते भये भी आदमीकु अपनी वृत्तिपे काबू नहीं आवे है. मन्दिरन्के व्यवस्थापक भी चतुर होवे हैं. पहलेसु ही सुचना छपा देवें के इतने हजार रूपैया दोगे तो तुम्हारे नामको शिलालेख लगवायो जायगो. शिलालेख लिखवावेकेलिये दे दें बाकी नहीं देते. मतलब साफ है न के वो झूठ बोल

रहे हैं. तो समझो के ये लोभ ओर अनृत की वृत्तिएं हैं जिनके कारण दुनियामें मोह और झूठ को काम चलतो रहे है.

या विवेचनापेसु सेवाकर्ताकु ये बिचारनो है के वाके भीतर भी कछु न कछु लोभ तो है ही, हम यों तो नहीं कह सकें के अपने भीतर लोभ सर्वथा नहीं है. ऐसे ही अपने भीतर झूठकी मनोवृत्ति भी होवे ही है. बगलाके चोंचके दो पुट जैसी ये दो मनोवृत्तियें मिलके जैसे सामान्य जीवनमें दम्भकु पैदा करती होवे है ऐसे ही प्रभुसेवाके समय भी दम्भकु पैदा कर सके है. पर अपने भीतर रहे भये या बगलापे ठाकुरजीकु एक चान्स् देनो चहिये. अवतारकालीन लीलाकी तरह अभी अनवतारकालमें भी या बगलाकी चोंचकुं ठाकुरजी ऐसी फाड़ें के लोभ ओर जूठ, दुनियामें भले जैसे चलते होंय सो चलते रहें पर, ठाकुरजीकी सेवामें तो नहीं ही चलें. तो या भावसुं एक बगला भी ठाकुरजीके सामने खिलौनाके रूपमें रख देनो चहिये के भई ये हमारे भीतर लोभ ओर झूठ की जो वृत्ति हैं वो तोकु अच्छी लगती होंय तो खेल, नहीं अच्छी लगती होंय तो वाकी चोंचकु फाड़दे - चीरदे के जासुं कमसु कम तेरी सेवामें तो लोभ ओर झूठ हमारे भीतर नहीं आवें. बाकी दुनियाकी बात दुनियामें देखी जायगी. वो तो जैसे अपने कर्म होंयगे वैसी अपनी गति होयगी. पर जैसे गुजरातमें कह्यो जाय है के ''एक घर तो डाकण भी छोड़े'' ऐसे एक भक्तिमें तो अपन लोभ और झुठ कु छोड़ें इतनो छोड़ें वाकेलिये एक बगला ठाकुरजीके सामने सजा दें. पर ध्यान रहे, उपरवाले पड़पे नहीं, नीचेवाले पड़पे. देखो, ये दोस्तीको इज़हार है हों. ये दो दोस्तके बीचकी ऐसी बात है के जो गामकु कभी भी पता नहीं चलेगी के बगला क्यों रख्यो है. और ये भी अपने और अपने ठाकुरके बीचकी टोप् सीक्रेट बात रहेगी के बगलाकी चोंच फाड़ी जा रही है के नहीं. फाड़ी जाय तो भी वो तुम्हारे और तुम्हारे ठाकुरके बीचकी बात है ओर नहीं फाड़ी जाय तो भी वो तुम्हारे और तुम्हारे ठाकुरके बीचकी बात रहेगी. पर एक बगलाको खिलोना अपने ठाकुरके आगे अवश्य सजाओ. देखो, ये बड़ी मजेदार बात है, सेवाको बड़ो मीठो क्रम है ये के अपनने ठाकुरजीके सामने एक बगला भी सजायो है, एक बन्दर भी सजायो है, एक शेर भी सजायो है.

भगवल्लीलानुसन्धान :

जब ये सारी लीलाएं हो गयीं तब भागवतमें पौगण्डलीलाके उपसंहारमें एक बात आयी है के एक समय ब्रजमें ऐसो आयो के तब सब व्रजभक्तन्को प्रभुमें प्रेम इतनो परिपूर्ण हो गयो के ब्रजको हर व्यक्ति चाहे फिर वो ठाकुरजीको सखा होय, ठाकुरजीके माता-पिता होंय, ठाकुरजीके सेवक होंय सब निरन्तर ठाकुरजीकी चर्चा-बात करतेभये हो गये ''इति नन्दादयो गोपा: कृष्णरामकथां मुदा''. नन्दादि गोप दिन-रात ठाकुरजीकी चर्चा करते रहते हते. तो वाके अनुरूप अपन क्या करेंगे? तो श्रीलालूभट्टजी

कह रहे हैं के वाके अनुरूप अपनकु भगवल्लीलाको भागवतको नित्य पारायण करनो चहिये. यदि संस्कृत आती होवे तो भागवतको और नहीं आती होय तो प्राचीन भगवदीय रचित भगवल्लीलाके पद-कीर्तनको गान करनो. प्राचीन अष्टछापसुं लेके अर्वाचीन नागरीदासजी, वल्लभदासजी, भारतेन्तुबाबु हरिश्चन्द्र पर्यन्त भगवदीयन्‌ने बहुत सारी भगवल्लीलाएं लिखी हैं. उन भगवल्लीलाको सहजभावसुं अवगाहन वा तन्मयताके साथ और जीवनप्रणालि के रूपमें करवेको प्रयतव करनो चहिये के जैसे व्रजभक्त कियो करते हते.

एक बात समझो के सामान्यतया अपन जब भागवत्कथा सुने हैं या कोई पाठादिक करे हैं वा बखत एक तरहके धार्मिक अनुष्ठानको भाव अपने अंदर जोर पकड़ जाय है. और आजकल चल पड़ी भागवतके साप्ताहिक पारायणकी प्रणालीकु जब मैं देखुं हुं तब सचमुचमें मोकु सम्प्रदायके दुर्भाग्यकु सोचके अत्यन्त कष्ट होवे है. क्योंके अपने यहां भागवतकी सप्ताह कभी होती ही नहीं हती. अपने यहां भागवतको अनुसन्धान नित्य प्रति होतो हतो. पुष्टिमार्गी व्यक्ति नित्य प्रति थोड़ी-थोड़ी भागवत करतो ही हतो. आज वो नित्य प्रतिकी भागवत अपनी छूट गई ओर बरसमें दो-चार बार सप्ताह सुनवेको अपनकु शौख हो गयो. मतलब, के भागवत् और भगवल्लीला को अवगाहन अपनेलिये जीवनशैली नहीं रहके पिकनिक् शैली बन गयो. जीवनशैली केसी होवे? नित्य होवे. ओर पिकनिक् शैली कैसी होवे? स्कूलमें जब छुट्टी होवे तब पिकनिक् केलिये जाओ. असलमें अपने यहां भागवतको अनुसन्धान पिकनिक् जैसो कभी नहीं हतो. अपनेलिये भागवतको अनुसन्धान एक जीवनशैली हतो, रोजकी बात हती. पर अपनेकु क्योंके प्रतिदिन वो अच्छी नहीं लगे है करके अपन बरसमें दो-चार बखत भागवतकी सप्ताह करवा ले हैं. ये सप्ताहविधि अपने यहांकी प्रणाली नहीं हती ये तो मर्यादामार्गकी प्रणाली है. पुष्टिमार्गमें भागवत सप्ताह नहीं है, पुष्टिमार्गमें भागवत नित्यप्रति होवे है. वाके पीछेकी भावनाकु ध्यानसुं समझो.

जो बात आपकु बहुत प्रिय होवे वो आप नित्यप्रति करोगे. अब एक सामान्य उदाहरण समझलो के देश-दुनियाके समाचार जाननो अपनकु अच्छो लगे है वा कारणसुं अपन अखबार-छापा नित्यप्रति बांचे हैं के नहीं. ऐसे यदि अपनकु प्रभु प्रिय हैं तो अपनकु प्रभु सम्बन्धि बातें भी प्रिय होनी ही चहिये. यदि वो प्रिय हैं तब अपन्‌कु भागवतको अनुसन्धान भी दैनिक ही करनो चहिये, साप्ताहिक नहीं. और यदि अपनकु भागवत बांचनो दैनिक अच्छो नहीं लगे हे, कंटाला आवे हे, जितनो मजा दैनिक छापा पढवेमें आवे है उतनो मजा भागवत पढवेमें नहीं आवे है तो समजो के अपनकु प्रभुमें भी मजा नहीं आवे है. करके अपन वाकु सालमें एकाधबार साप्ताहिक श्रवण करे हैं. ऐसी भागवत सप्ताह मूलमें

पुष्टिमार्गीय प्रणाली नहीं है. अपने यहांकी प्रणाली तो वो हती के चाहे एक ही प्रसङ्ग करो, एक प्रसङ्गसुं ज्यादाकी जरूरत नहीं हे, परन्तु मूल भागवतसुं करो, चाहे भागवतके अनुवादसुं करो, चाहे तो भगवदीयन्नें भागवताश्रित जो पद-कीर्तन गाये हैं उनको गान-अनुसन्धान करो. परन्तु एक प्रसङ्ग रोज करो जासुं अपने दिलकु ये अभ्यास रहे के भागवतकी कथा अपने यहांको दैनिक कार्यक्रम हे, पिकनिक् जैसो कार्यक्रम नहीं है. भागवत अपनी जीवनशैली है. भागवत पिकनिक् नहीं है. आप कहोगे के भई पिकनिक् में तो ज्यादा मज़ा आती होवे हे, दैनिक जीवनमें उतनो मज़ा नहीं आवे है. घरमें रहेवेमें उतनो मजा नहीं आवे जीतनो काश्मीर, कोड़ाई केनाल, आबु घूमवेमें आवे है. तो एकबात ध्यानसुं समझो के वो मज़ा कभी स्थायी नहीं होवे है.

मैं एक बार काश्मीर गयो हतो. काश्मीरके कोई शहरकी बात नहीं कर रह्यो हूं. बहुत ऊपर पहाड़न्पे गुजरातसुं वहां बसे भये गुर्जरलोग भेड़ चरावे हैं. वो इतनी खुबसुरत पाग बांधते होवें हैं के मोकु उनकी पाग देखके अपने ठाकुरजीकु भी वैसी पाग धरावेमें बड़ो मजा आवे है. या बहाने उनके साथ बैठके थोड़ी देर एक गुर्जरके संग गप्प मार रह्यो हतो. बात ही बातमें वा गुर्जरने मोंसु पूछी के तुम कहांसु आ रहे हो? मैने कही मैं बम्बईसुं आ रह्यो हूं. वाने मोसुं कही के एक बखत हमकु भी बम्बई ले चलो न. मैंने कही के भाई बम्बईमें क्या धर्यो है? यहां तो स्वर्ग है. तो वाने कही के यहां क्या धर्यो है? मैने कही के यहां कछु नहीं धर्यो होता तो हम कोई बेवकूफ हैं के यहां चक्कर मार रहे हैं? तो वाने कही के मैं भी तो येही सोच रह्यो हूं के आप लोग यहां आओ क्यों हो? तो बात ध्यानसुं समझो के जो काश्मीरमें रह रह्यो है वो वहांसुं उतनो ही परेशान है जितने परेशान हम बम्बईसुं हैं. वहांके आदमी बम्बईकेलिये लालायित हैं अपन काश्मीर देखवेकेलिये लालायित हैं. तब मोकु ये बात समझमें आ गईके जो आदमी जहां है वहांसु कभी भी सन्तुष्ट नहीं हो सके है. आदमीकु यदि स्वर्ग दे दें न तो भी बरस छे महिना स्वर्गमें रहवेके बाद वो सोचेगो के एकाद दिन नरककी यात्रा कर आयें तो अच्छो. वो स्वर्गमें भी एप्लिकेशन् देगो के रविवारकी छुट्टी होय तो एक दिन नरक घूम आवें. भगवान् भी कहेंगे के जा यार घूम आ. आदमीको मन एक बन्दर है. एक डालीपे बैठनो याकु आवे नहीं है. ये ही कारण है के अपनकु पिकनिक् अच्छी लगे है. बाकी एक बात अच्छी तरहसुं समझो के अपनकु अपनी चञ्चलताके कारण घरमें भले वो मज़ा नहीं आती होय पर घरको जो सुख होवे है वो स्थायीसुख होवे है. एक शायरने बहुत अच्छी बात कही है : ''वतनकी कशिश और वतनकी मुहब्बत जरा कोई देखे वतनसे निकलके''. अपने वतनकी कशिश क्या है; वतनकी मुहब्बत क्या है वो जब वतनसुं बहार जाओ तब वाकी प्रतीति आदमीकु हो सके है. ऐसे ही घरसुं बहार जाओ तब घर कितनो अच्छो है वो पता चले हे. घरमें रहोगे तो वा गुर्जरकी तरह तुमकुं विचार आयगो के यहां कहा धर्यो है. धर्यो कछु

नहीं है पर घरमें आदमी रम जाय है, पिकनिक्में आदमी रम नहीं सके है. आप आग्रा जाके ताजमहलकु देख सको हो पर ताजमहलमें रह नहीं सको हो. रहवेकेलिये ताजमहलके बजाय घरकी झोंपड़ी भी ज्यादा सुखद लगेगी. यहां भी आप उदयपुरके महल देख आओ, जयपुरमें जाके चांद महल देख आओ. देखवेकेलिये वो सब अच्छे हैं पर रहवेकेलिये अपनो घर उनसुं ज्यादा अच्छो है, ज्यादा सच्चो है ये बात भूलनी नहीं चहिये. ऐसेही साप्ताहिक छुट्टीन्के कार्यक्रम रोचक ज्यादा हो सके हैं पर उनमें स्थायिता नहीं है. वाको स्वरूप बिलकुल वाही तरहको है के एक दिन अपनने गोठमें दाल-बाटी बनाली या कोई दिन चूरमा-बाटी बनाली, तो कोई दिन रसगुल्ला बनालिये, गुलाबजामुन बनालिये. परन्तु भाई, ये सब चीजें रोज खावेकी नहीं हैं. रोज खावेकी तो रोटी, शाग, दाल-भात ही अच्छी और सची चीज होवे हैं. वासु ही आपको स्वास्थ्य भी ठीक रहेगो, वासु ही आपको हाज़मा भी ठीक रहेगो और वासु ही आप निरोगी रहोगे. और यदि रोज़में अपन वैसी चीजें खावें तो कछु न कछु उपद्रव होयगो, होयगो और होयगो ही. ऐसे ही समझो के रोजकी पिकनिक्में कोई सार नहीं होवे है. आदमीकु स्वस्थतासुं जीवेकेलिये तो घर ही अच्छो होवे है. ऐसे ही भागवतकी सप्ताहविधि भी मनकु बहलावेकेलिये शायद अच्छो उपाय हो सकतो होयगो पर स्वास्थकारी और स्थायी लाभ देवेवारो पुष्टिमार्गीय उपाय तो दैनिक भागवतको अनुसन्धान करनो ही है.

भगवत्कथाकु जीवनशैली बनाओ :

श्रीमहाप्रभु निबन्धमें आज्ञा करे हैं : ''अथवा सर्वदा शास्त्रं श्रीभागवतमादरात्, पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम्''.. श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के प्रतिदिन भागवतको थोड़ोसो भी अवलोकन जा भाषामें आप कर सकते हो वा भाषामें करो. वासुं आपको मन वा रङ्गमें नित्यप्रति रङ्गा जायगो. एक बात बिचारो के अपन शाग तो रोज बदल-बदलके खाते होवे हैं परन्तु कोईकु भी आपने रोटीकु बदल-बदलके खाते देख्यो है? पानी कोई बदलके पीवे है? वो तो रोज वोको वोही होवे है. रोज वोही पानी पीवे पर भी अपन वासुं कभी उकता जावे हैं? नहीं. क्यों नहीं उकतावे हैं? क्योंके पानी अपने जीवनकी आवश्यकता है. ऐसे ही भगवत्कथा और भगवत्सेवा भी अपने जीवनकी वा तरहकी आवश्यकता है के जैसे पानी अपनी आवश्यकता है. भगवत्कथा और भगवत्सेवा कु आप जब वा तरहसु स्वीकारोगे तो वो आपकी जीवनशैली बन पायेगी. अन्यथा तो वो पिकनिक् शैली बन जायेगी. पिकनिक् बुरी बात नहीं है, ठीक बात है, परन्तु वासुं भी एक अच्छी बात श्रीमहाप्रभुजी अपनकु पुष्टिमार्गमें समझा रहे हैं के भगवत् कथा और भगवत्सेवा अपनेलिये पिकनिक् नहीं होके अपनी जीवनशैली बननी चहिये.

भगवत्कथा भक्तके जीवनकी हकीकत है :

एक और दृष्टान्त लो तो जैसे अपन नित्यप्रति अखबार पढते होवे हैं पर कभी अपन उकतावें हैं? अखबारमें रोज ही तो हत्याकी, दलबदलवेकी, डकैतीकी कथाएं आती रहेवे हैं पर कभी तुम उकताओ हो? नहीं. क्योंके अपने मनकु उन सारी बातन्में मजा आतो होवे है. ऐसे ही प्रतिदिन भगवत्कथा करवेसु अपन क्यों उकता जावे हैं? क्योंके अपनो मन वामें लग नहीं रह्यो है यालिये अपन वाकु पिकनिक्के रूपमें एंजोय् करनो चाहे हैं. परन्तु एक बखत तुम वाकु जीवनकी तरह स्वीकारके देखो, फिर तुम्हारो मन जैसे अखबार पढवेमें नहीं उकतावे है ऐसे भगवत्कथा करवेमें भी तुम्हारो मन नहीं उकतावेगो. वामें तुमकु आनन्द आयगो. अपने यहांकी फिल्मनमें भी तो एक ही स्टोरी होवे है. वाने वासु प्रेम कियो, और फिर वामें एक विलन आ गयो, वाने उनके प्रेममें कछुक बाधा डालदी, फिर हीरोने वा विलनकु खत्म कर दियो और अन्तमें हीरो-हीरोईन मिल गये और देखवेवालेकु आनन्द-आनन्द हो गयो. रोज-रोज एकसी ही कथा देखनी तुमकु पसन्द आ रही है के नहीं? आजकल टीवीकी सीरीयल देखते लोग ऐसे दीखते होवे हैं के जैसे योगीलोग ध्यान धरवे बैठे होंय. ‘‘ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः, यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः’’. आप विचार करो के ऐसो क्यों हो जाय है? क्योंके अपनने कहीं न कहीं दिलमें ये बात स्वीकार ली है के ये अपने जीवनकी हकीकत है. होयगी वो अपने जीवनकी हकीकत पर एक बात समझो, तुम इतनो चान्स भगवान्की सेवा और भगवान्की कथाकु भी तो दे के देखो वो भी आपके जीवनकी एक हकीकत है. एक बखत वाकु भी अपने जीवनकी हकीकतके रूपमें स्वीकार लोगे न फिर वाकु भी आप दैनिक रूपसुं करवे लगोगे. और यदि वाकु आप जीवनकी हकीकतके रूपमें नहीं स्वीकारोगे और पिकनिक् मूडमें स्वीकारोगे तो फिर वाकु रोज नहीं कर पाओगे. वाकु अपने जीवनकी हकीकतके रूपमें स्वीकारो.

पुष्टिभक्ति = सेवाकथापे निर्भरता :

यामें एक बात समझो के जीवनकी हकीकतमें अपनेकु उत्साह कम होवे है पर निर्भरता ज्यादा होवे है. जैसे आपकु आग्राके ताजमहलपे निर्भरता नहीं है पर ताजमहलकु देखवेमें उत्साह ज्यादा होयगो. काश्मीर या नैनिताल घूमने जाओगे तो उत्साह ज्यादा आयगो पर वापे निर्भरता नहीं आयगी. पर अपने घरमें अपनकु निर्भरता ज्यादा होवे है, उत्साह भले होवे के नहीं होवे. ऐसे ही, आवश्यकता अपनेकु कृष्णकथा और कृष्णसेवा पे निर्भर होवेकी है. निर्भर होनो माने बच्चा जैसे मांपे निर्भर होवे है. ऐसे ही आवश्यकता अपनकु कृष्णकथा और कृष्णसेवा पे निर्भर होवेकी है, कृष्णकथा और कृष्णसेवा की उत्तेजनाकी नहीं है. उत्तेजना पिकनिक् में होवे है, निर्भरता घरमें होवे है. रोटी-दाल खावेमें अपनी निर्भरता है. पर कोई दिन रसगुल्ला खा रहे हैं, कोई दिन गुलाबजामुन खा रहे हैं, वामें निर्भरता नहीं है, वामें उत्तेजना है. तो उत्तेजना और निर्भरता को अन्तर अपनेकु समझनो चहिये.

सेवा–कथा क्षणिक उत्तेजनाजन्य नहीं होनी चहिये :

श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तके अनुसार भगवत्कथा और भगवत्सेवा अपने जीवनमें पैदा होती भई उत्तेजना नहीं होनी चहिये, अपने जीवनमें प्रकट होती भई निर्भरता होनी चहिये. बिलकुल वैसे ही के जैसे अपन पानी पीवेमें निर्भर हैं. पानी पीवेमें कोई उत्तेजना नहीं होयगी. कई लोग कहते होवे हैं के हम दस सालसुं सेवा कर रहे हैं पर वामें निरन्तर मजा नहीं आवे है. मैं तो ये बात कहूंगो के इतने सालसुं तुम निष्ठासुं सेवा कर रहे हो वाके कारण तुम्हारी जो निर्भरता प्रकट भई है वो मजासुं कई गुनी अधिक है. एक बात ध्यानसुं समझो के अपन अपने परिवारके सदस्यन्के संग जब हिल–मिलके जी रहे हैं तब अपनकु वा सम्बन्धमें उत्तेजना नहीं होयगी. परन्तु परस्पर एक–दूसरेपे मानसिक निर्भरता आयगी. वो निर्भरता अपनकु तब तक पता नहीं चलती होवे है के जब तक अपन एक–दूसरेसुं बिछड़े नहीं हैं. जब कभी बिछुड़े तब दोनोंन्के दिलमें कहीं न कहीं रीतोपन लगवे लगे है, कहीं न कहीं खालीपन कचौटेगो ' ' अरे कहां गये वो''. और जिन सम्बन्धन्में अपनकु उत्तेजना तो आ रही है, निर्भरता नहीं आ रही है वामें रीतोपन नहीं लगेगो. मिले तो ठीक, नहीं मिले तो ठीक, ऐसे हो जाय है. ऐसे ही कृष्णकथा और कृष्णसेवा कु उत्तेजनाको विषय मत बनाओ. अपनी मानसिक निर्भरताको विषय बनाओ. ऐसी निर्भरता के वो नहीं मिले तो अपनेकु मनमें खालीपन लगने लगे. ऐसो खालीपन लगनो वो जीवनकी हकीकत कहवावेगी पर उत्तेजना जीवनकी हकीकत नहीं कहवावेगी. वो पिकनिक् जैसी बात है. इतनो अन्तर अपनेकु खास समझनो चहिये.

सेव्य–सेवककी परस्पर निर्भरता = पुष्टिभक्ति :

ये बात जब अपन समझेंगे तब श्रीमहाप्रभुजीको मूड़ कृष्णभक्तिमें क्या है वो अपनी समझमें आयगो. और यदि वो अपनी समझमें आयो तो श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के तब समझो के अपनो प्रेम भगवान्में स्थिर भयो. प्रेम जो है वो एक–दूसरेपे प्रकट होती निर्भरता है. एक–दूसरेसुं मिलती उत्तेजना नहीं है. दाम्पत्य एक–दूसरेसुं उतेजनाकेलिये नहीं है. एक–दूसरेपे निर्भर होवेको नाम ' दाम्पत्य' है. यापे वो निर्भर है, वो यापे निर्भर है ये दाम्पत्य है. जब तक निर्भरताको भाव नहीं जगेगो तब तक शुद्ध दाम्पत्य नहीं हो सके है. उत्तेजनाकोभाव तो वेश्यागामी पुरुषमें भी आ सके है पर उनमें परस्पर निर्भरताको भाव कभी आ नहीं सके है. ऐसे अपनो ठाकुर सेवाकेलिये अपनेपे निर्भर हो जाय और अपन सेवा करनेकेलिये अपने ठाकुरपे निर्भर हो जायें. अपन अपने ठाकुरकी कथासुं उत्तेजना प्राप्त नहीं करेंगे, अपन् अपने ठाकुरकी कथापे निर्भर होनेको भाव प्राप्त करेंगे. जब ऐसो भाव अपनो प्रकट होयगो तब, एक बात ध्यानसु समझो के, अपनो ठाकुर भी अपनी कथापे निर्भर होयगो. एक शायरने कही है :

''सवाल-ए-मयकशी कुछ है, कमाल-ए-मयकशी ये है कि साकी खुद पिलानेको जहां मजबूर हो जाय''. तो वो कमाले मयकशी कहवायेगी के जब ठाकुर अपने सेवककी कथा करेगो के देखो, मेरो ये सेवक मेरी सेवा करे है. आसकरणदासजीपे ठाकुरजी निर्भर भये हते, पद्मनाभदासजीपे ठाकुरजी निर्भर भये हते, रजो क्षत्राणि और गज्जन धावन पे ठाकुरजी निर्भर भये हते. करके गज्जन धावनकु अक्काजीने जब पान लेवेकेलिये भिजवायो तो श्रीनवनीतप्रियजीने कही के ''मैं तब तक अरोगुंगो नहीं के जब तक गज्जन आ नहीं जावे''. ये परस्पर निर्भरताकी बात है, ये परस्परकी उत्तेजनाकी बात नहीं है, ये वो प. भ.की बात नहीं है के जो आज मनोरथ करा गयो और कल भूल गये ठाकुरजीकु. आज एक लाखको मनोरथ करवा दियो और कल वा ठाकुरजीके दर्शन करवे भी नहीं आये क्योंके वहां निर्भर तो है ही नहीं. तो बात ध्यानसुं समझो के ये सब उत्तेजनाकी बातें हैं. ऐसी भगवत्सेवा और साप्ताहिक भगवत्कथा को प्रकार श्रीमहाप्रभुजीकु अभिप्रेत सेवा-कथाको प्रकार नहीं है. श्रीमहाप्रभुजीकु अभिप्रेत सेवा-कथाको प्रकार भगवान् भक्तपे निर्भर हो जाय, भक्त भगवान्पे निर्भर हो जाय, ऐसो निर्भर के वाकु याके बिना नहीं चले, याकु वाके बिना नहीं चले याको नाम श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं के 'पुष्टिभक्ति' है. या प्रकारसुं कोईकु उत्तेजना होवे के नहीं होवे, या प्रकारसुं उमङ्ग होवे के नहीं होवे कोई चिन्ताकी बात नहीं है. पति-पत्नीके बीचमें उमङ्ग-उत्तेजना कितनी होयगी? कोईके भी घरमें जाके देखलो. अधिक नहीं होयगी. पर निर्भरता निश्चय ही होयगी. पति समयपे घर नहीं आयो तो वाकु चिन्ता अवश्य होयगी. ऐसी चिन्ता वेश्याकु नहीं होवे है. क्योंके वहां निर्भरता नहीं होवे है.

तो या बातकु ध्यानसुं समझो के अपनेकु प्रभुपे निर्भरता होनी चहिये. प्रभुकी अपनेपे निर्भरता होनी चहिये. उमङ्ग होय के नहीं होय. उमङ्गन्के बीचमें मोहित मत हो जाओ. स्नेह सम्बन्धकी उमङ्गन्के बीचमें स्नेह सम्बन्धकी पारस्परिक निर्भरता जो होवे है वाकु पकड़ो. तब श्रीमहाप्रभुजीको भक्तिको मूड क्या है वो आपकु सच्चे अर्थमें समझमें आयगो. ये परस्परकी निर्भरताको नाम ही श्रीमहाप्रभुजी प्रेम कह रहे हैं.

प्रेम सिद्ध हो गयो, परस्पर निर्भरता हो गई वाके बाद श्रीमहाप्रभुजीके हिसाबसुं, प्रेम प्रकरणके बाद लीलामें, आगेकी यात्रा आसक्तिकी है. प्रेम, आसक्ति, और व्यसन ऐसे भक्तिकी तीन दशाएं 'भक्तिवर्धिनी'में श्रीमहाप्रभुजीने बताई हैं. प्रभुमें प्रेम सिद्ध होवेके बाद धीरे-धीरे अपनो मन प्रभुमें आसक्त होनो शुरू होयगो.

देहाध्यासरूप धेनुकासुरको वध :

भागवतके आसक्ति प्रकरणमें प्रभुद्वारा धेनुकासुरको वध होवेको वर्णन आवे है. ये धेनुकासुर क्या बला है वाकु श्रीमहाप्रभुजी समझा रहे हैं के धेनुकासुर अपनो देहाध्यास है. ‘देहाध्यास’को मतलब के अपन अपने देहकु ही अपनो मान रहे हैं अपनी आत्माकु अपनी नहीं जान रहे हैं. याको नाम देहाध्यास. ये देहाध्यास अपने भीतर रह्यो भयो एक गधापन है. गधापन क्यों? क्योंके उतनो तो गधाकु भी पता होवे है. आप पूछोगे कैसे? शङ्कराचार्यजीने याकेलिये एक बड़ी सुन्दर बात बताई है. वो कहे हैं के ‘‘समानपश्वादिभिः पुरुषाणां प्रमाणप्रमेयव्यवहार:’’. पुरुषको और पशुको व्यवहार देहाध्यासके कारण एक जैसो होवे है. वो कैसे? उनने कही के कोई चाहे कितनो भी बड़ो पण्डित होवे पर डण्डा लेके कोई पण्डितके पीछे दौड़े तो पण्डित भी वैसे ही भागे है के जैसे गधा भागे है. बहुत बड़ो पण्डित होवे, वाकु तुम भेंट धरवे जाओ तो वो भी तुमकु कहेगो के ‘‘आओ भई आओ, आओ, बैठो खाओ, कैसे हो ...’’ ऐसे ही यदि तुम घास लेके गधाके सामने जाओगे तो वो भी ऐसो ही कछुक कहनो चाहेगो. या लिये शङ्कराचार्यजी कहे हैं के पण्डित होय के गधा होय देहाध्यास तो दोनोन्में इकसार ही होवे है. या कारणसुं श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के वैसे शरीर तो अपनो मनुष्यको है पर ये जो देहाध्यास है वो अपने भीतर एक गधाके जैसो मौजूद है. और वो ही धेनुकासुर है के जाको लीलामें प्रभुने वध कियो है.

प्रभुमें जब अपनी आसक्ति होयगी तब अपनो देहाध्यास शिथिल होयगो. देहाध्यास शिथिल होवेको मतलब ये है के अपन अपने देहकु सब कछु नहीं मानेंगे पर अपने प्रभुकु अपनो सब कछु माननो शुरू करेंगे. देह तो है सो है पर वो अपनेलिये सबकछु नहीं है. अपनेलिये यदि कोई सबकछु होवे तो वो प्रभु है. ये भावना अपने भीतर आसक्ति सिद्ध होवेपे प्रकट होयगी. करके श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के ‘‘अत्र सेवाकर्तुः देहस्य स्वकीयत्वाध्यासो गच्छति’’. व्रजभक्तें जैसे यों कहे हैं के ‘‘ये देह मोकु प्रिय है यालिये मैने धारण नहीं कियो है पर ये देहसु तेरी सेवा हो सक रही है याकेलिये मैंने या देहकु धारण कर रख्यो है’’. यहां देहमेंसु देहाध्यासके शिथिल होयवेको एक स्वरूप बतायो गयो है. पुष्टिभक्त जब देहकु धारण करे है तो वो वाकु प्रिय है यालिये धारण नहीं करे है पर देहकी भी कछुक भगवत्सेवोपयोगीता है वालिये धारण करे है.

विषयासक्तिरूप नागके दमनकी लीला :

जब देहाध्यास शिथिल होयगो, जब धेनुकासुर मरेगो, अर्थात् जब अपने भीतर रह्यो भयो गधा खत्म होयगोह्न गधा कहो चाहे गधापन कहो एकही बात है वो खतम होयगो ह्नवाके बाद लीलामें कालीनागकु प्रभुने नाथ्यो है. ये कालीनाग क्या है वाकु श्रीमहाप्रभुजीने बहुत सुन्दर समझायो है. कालीनाग

जैसे यमुनामें पलनेवालो एक विषैलो सर्प हतो ऐसे अपनी भक्तिकी यमुनामें विषयन्के प्रति अपनी जो आसक्ति है वो कालीनागके विषैले फन हैं. आंखनकु रूप अच्छो लगे है, काननकु शब्द अच्छो लगे है, जीभकु मठड़ीको स्वाद अच्छो लगे है, नाककु सुगन्ध अच्छी लगे है ... ये सब विषयासक्ति हैं. अपनी ये विषयासक्ति भक्तिमें बाधक भी हो सके है और साधक भी हो सके है.

आप पूछोगे के साधक कैसे हो सके है और बाधक कैसे हो सके है ? अपने यहां वार्तामें याको बड़ो सुन्दर वर्णन आयो है. दो भगवदीय एक संग श्रीगुसांईजीके पास गये. दोनोन्कु अपने घर ठाकुरजी पधराने हते. श्रीगुसांईजीने एकसु पूछी के भाई बोल तेरेकु क्या-क्या शौक हैं? तो वाने कही के मोकु तो कोई शौक नहीं है. तब श्रीगुसांईजीने वासु कही के तोकु ठाकुरजी पीछे सोचके पधराउंगो. दूसरेसुं पूछी तो वाने कही के मोकुं थोड़ो खावेको शौक है. श्रीगुसांईजीने वाकु ठाकुरजी पधरा दिये. पहलेवालो बिचारो परेशान हो गयो के खावेके शौकीनकु आप श्रीठाकुरजी पधरा दे रहे हो और मैं विरक्त हूं तब भी मोकुं पधरा नहीं दे रहे हो तब श्रीगुसांईजीने वहां खुलासा कियो के याकु खानेको शौक है तो ठाकुरजीकु कछु भोग तो धरेगो. और तू तो विरक्त है तु कहा ठाकुरजीकी सेवा करेगो यालिये मैने वाकु ठाकुरजी पधराये और तोकु नहीं पधराय. तो देखो विषयासक्त आदमी यदि भक्त बने है तो वो अपने आसक्तिके विषयन्को प्रभुसेवामें विनियोग करके समर्पित महाप्रसादको भोग करते भये अपनो जीवन कृतार्थ कर सके है. और साथ ही साथ अलौकिक भोगके कारण विषयद्वारा होते अनिष्टसुं बच भी सके है. या प्रसङ्गमें अपन देख सके हैं के एक वैष्णवकी विषयासक्ति भक्तिमें कैसे साधक बनी. ऐसे ही दूसरे वैष्णवकी विषयमें विरक्ति वाकी भक्तिमें कैसे बाधक बनी येभी या ही प्रसङ्गसुं अपन समझ सके हैं.

श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के

‘‘यथा कालीयशिरांसि विषयसंसृष्टेन्द्रियरूपाणि ... चरणारविन्देन भक्तिरूपेण विमर्द्य शोधितानि. ... तथा इहापि विषयोन्मुखानि इन्द्रियाणि भजनेन संशोद्य भगवत्पराणि क्रियन्ते’’.

श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें बहुत सुन्दर बात बतावे हैं : ‘‘यद् यद् इष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः, येन स्यान् निर्वृतिश्चित्ते तत् कृष्णे साधयेद् ध्रुवम्’’. जो चीज तुमकु पसन्द है, जो चीज तुमकु अच्छी लगे है उनसुं तुम श्रीठाकुरजीकी सेवा करो. जब ये तुम्हारी जीवनशैली बन जायगी के जो चीज तुमकु

अच्छी लगे है वाकु तुम अपने ठाकुरजीसुं जोड़के पीछे ले रहे हो तो धीरे-धीरे तुम्हारो अच्छो या बुरो लगनेको विवेक ठाकुरजीसुं जुड़ जायगो. तब वो झटसुं भक्ति बन जायगो. और जा बखत अच्छे-बुरेको उपभोग तुम अपनेलिये सोचोगे तो वो तुम्हारी संसारिता कहलायेगी, भगवत्परायणता नहीं कहलायेगी. जैसे कोई सुन्दर कपड़ाकु देखके तुम्हारे मनमें ऐसो विचार आवे के ऐसे कपड़ाको वस्त्र मेरे ठाकुरजीको होय तो कितनो अच्छो बस तुम्हारो मन भक्तिमय हो गयो. और जा बखत तुमकु ऐसो लग्यो के ' ' ये कपड़ा बड़ो सुन्दर है, याकु मैं पहनलुं'' तो समझोके तुम्हारो मन भक्तिमय होवेके बजाय सांसारिक हो गयो. या बातकु फिरसु ध्यानसु समझो के कभी तुमकु कोई गीत अच्छो लग्यो, अच्छो गीत तो कानकु अच्छो ही लगेगो, वा बखत तुमकु ऐसी इच्छा भयी के या गीतकु एक बखत ठाकुरजीके सामने गुनगुनाउं तो कैसो तो वो गीतको अच्छो लगनो भी तुम्हारी भक्ति हो जायगी. और वा गीतकु तुमने ठाकुरजीकु सुनावेके बजाय मटरगस्ति करते बखत यदि खुद गावे लगे तो वो तुम्हारी विषयासक्ति हो जायगी. मानो के तुमकु दाल-बाटी-चूरमा खुब भावे है. पर एक बखत तुमकु ऐसो भाव जग्यो के बरसात पड़ रही है, ठण्डक भी है, आज ठाकुरजीकु दाल-बाटी-चूरमा भोग धरें तो कैसो तो समझो के ये भक्ति हो गई. पर जब तुमकु ऐसो स्फुरित भयो के आज सावन है, बरसात बरस रही है, ठंडक हो गई है चलो गोठ करेंगे, दाल-बाटी-चूरमा खायेंगे तो ये संसार हो गयो. तो फर्क बस इतनोसो है. एक लाईनके हेर-फेरमें भक्ति और संसार है.

भगवान्के सङ्ग मज़ा लेनेको भाव भक्ति :

भक्ति न तो त्यागपे निर्भर है न भोगपे निर्भर है, भक्ति तो जो कछु अपन कर रहे हैं वाकी भगवानके संग मजा लेनेकी बात है. अपन् अपनी मजा भगवान्के साथ ले रहे हैं याको नाम भक्ति है. एक शायर कहे है ' ' जिसे तैशमें खौफ-ए-खुदा न रहा, जिसे ऐशमें याद-ए-खुदा न रही''. जा बखत तुम ऐश कर रहे हो वा बखत यदि तुमकु भगवान् याद आ रह्यो है, मतलब तुम भक्त हो. तैश आ रह्यो है वा बखत यदि तुमकु भगवान्को गुस्सा याद आ रह्यो है तो बस तुम भक्त हो. और यदि तुमने अपनो तैश अपनो खुद कर लियो, अपनो ऐश खुद कर लियो तो तुम शायद ज्ञानी हो सको हो, विद्वान हो सको हो, कुछ भी हो सको हो पर भक्त तो नहीं होओगे ये बात तो साफ तौरपे समझ जानी चहिये. करके अपने ऐशमें अपनेकु भगवान् याद आवें ये पहली शर्त है. जैसे कोई घूमने लायक अच्छी जगह अपन गये होवें तब वाके विषयमें अपने मनमें विचार आवे के भई मेरो दोस्त मेरे साथ होतो तो ऐसे कोई अच्छी जगहकु देखके तुमकु ये भाव जग्योके ठाकुरजीकु पधराके एक दिन जावें तो तो समझो के घूमवेकी इच्छा तुम्हारी भक्ति हो गई. और जा बखत तुम अच्छी-अच्छी जगह घूमके आये और ठाकुरजीकु दण्डवत लगाके कहवे लगो के भई तेने ये दुनिया बड़ी अच्छी बनाई है, कैसी-कैसी जगह

घूमवे मिली ... तो समझो के तुम ठाकुरजीके कृतज्ञ होगे पर ठाकुरजीके भक्त तो नहीं हो. क्योंके भक्तिमें तो तुमकु भगवान्‌के संग मजा लेनी चहिती हती. ये मुख्य बात है. ये बात कब स्थिर होयगी ? तब के जब तुम्हारी भगवदासक्ति स्थिर होयगी. जब तुम्हारी भगवदासक्ति स्थिर होयगी तब तुम्हारो इन्द्रियाभिमान दूर होयगो. ये क्रम है.

दावाग्निपान और इन्द्रियाध्यासनिवृत्ति :

लीलामें इन्द्रियाभिमान दूर कैसे भयो? तो श्रीलालूभट्टजी कह रहे हैं के कालीनागकु नाथवेके पीछे लीलमें जो दावाग्नि प्रकट भई वो अपनी इन्द्रियन्‌को अभिमान है. अपनी हर इन्द्रियमें एक दावाग्नि जल रही है. 'दावाग्नि' माने जंगलकी आग जो बुझाये बुझ नहीं सके. ऐसी इन्द्रियाभिमान/इन्द्रियाध्यासकी दावाग्नि अपनी हर इन्द्रियमें जल रही है. इन्द्रियाभिमानकी ये दावाग्नि तब अपने आप बुझके शान्त हो जायगी अथवा जब तुम्हारी विषयासक्ति भगवन्मुख हो जायगी तब तुमकु अपने आप ये समझमें आ जायगो के जो भी कछु अच्छो है वो ठाकुरजीके साथ भोगवे लायक है और जो चीज ठाकुरजीके संग भोगवे लायक नहीं है वो अच्छी नहीं है ये बात तुमकु फिर कहे बिना भी समझमें आ जायगी.

अन्त:करणदोषरूप प्रलम्बासुरवध :

जब इन्द्रियाभिमानरूपी दावाग्निको पान प्रभुने कर लियो तब वहां प्रलम्बासुरको प्रभुने वध कियो है. प्रलम्बासुरको स्वरूप श्रीमहाप्रभुजीने बहुत सुन्दर समझायो है के वो अपने मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त में रहे भये दोष ह्न भक्ति विरोधी दोषन्‌को स्वरूप है. वाकु प्रभु दूर कैसे करेंगे? तो बता रहे हैं के जब इन्द्रियाभिमान नहीं रहेगो, जब देहाध्यास शिथिल हो जायगो, जब विषयन्‌को आनन्द लेवेको क्रम प्रभुके संग जुड़ जायगो तब फिर धीरे-धीरे अन्तःकरण स्वयं वा तरफ ढल जायगो.

एक बात समझो, ये एक रहस्य है. आंखकु देखनो अच्छो लगे है, कानकु सुननो अच्छो लगे है, जीभकु स्वाद अच्छो लगे है, चमड़ीकु स्पर्श अच्छो लगे है. ऐसे मनकु क्या अच्छो लगे है? मन तक यामेंसुं कौनसी चीज पहुंच रही है? कोई भी नहीं. क्या मन रोटी खावे है? क्या मन गाना सुने है? क्या मन रूप देखे है? मन कुछ नहीं करे है. मन क्या करे है? आंख जो रूप देख रही है वा आंखकु मन देखे है, कान जा गीतकु सुने है वा कानकु मन एटेंड करे है. जीभ जो स्वाद लेवे है वा जीभकु मन एटेंड करे है. त्वचा जा स्पर्शको मजा लेवे है वा त्वचाकु मन एटेंड करे है. तो मन तो ऐसो है के बाहरी इन्द्रियन्‌सुं जिन चीजनकी वाकु आदत डालोगे उन चीजनमें वो मजा लेवे लग जायगो. जब आपने वाकु भगवान्‌की आदत डाल दी तो मन भगवान्‌में मजा लेवे लग जायगो. अपनने जिन विषयन्‌की आदत इन

इन्द्रियन्कु डाली है वा विषयमें मन आनन्द लेवे लग जाय है. आप मांको दूध पीवेवाले कोई छोटे बच्चाकु देखियो. वाकु यदि शक्करवालो दूधा पीवाओगे तो वो मुंह बिगाड़ेगो. वाकु शक्करवालो दूध जल्दिसुं नहीं भावे है. पर एक बखत जब वो शक्करवालो दूध पीवे लग जाये पीछे बच्चाकु फीको दूध भानो बंद हो जाय है. कारण क्या? कारण ये ही है के जीभ यदि शक्करवालो दूध पी रही है तो मन शक्करवाले दूधको मजा लेगो. जीभ यदि फीको दूध पी रही है तो मन फीके दूधको मजा लेगो. बच्चाकु मिर्ची खवाओगे तो वो रोयेगो, आंखन्में आंसु आ जायेंगे. पर रोज थोड़ी-थोड़ी मिर्ची खिलाते जाओ, खिलाते जाओ, खिलाते जाओ. एक मुकाम ऐसो आयगो के जब वाकु मिर्ची बिनाको भानो ही बंद हो जायगो. तो देखो, मन कौनको मजा ले रह्यो है? मन मिर्चीको मजा नहीं ले रह्यो है, मन तो जीभको मजा ले रह्यो है. जीभकु जो आदत डालदो वाको मजा मन लेगो. कानकु जो आदत डाल दोगे वाको मजा मन लेगो. चमड़ीकु जो आदत डाल दोगे वाको मजा
मन लेगो.

आर्यसमाजके संस्थापक दयानन्द सरस्वतीको बड़ो सुन्दर प्रसङ्ग आवे है. हृषीकेश या हरिद्वार में दिसम्बरकी ठंडमें वो उघाड़े शरीरसुं बैठे भये हते. एक अंग्रेजने जाके उनसुं पूछी के महाराज आपकु ठंड नहीं लग रही है? दयानन्दजीने बड़ी मजेदार बात कही. उनने वासुं पूछ्यो के तुमकु ठण्ड लग रही है? तो वाने कही के बहुत लग रही है. तब उनने कही के तुमने अपने मुंहपे तो कछु कपड़ा नहीं पहन्यो है. तो अंग्रेज बोल्यो के मुंहकु तो उघाड़े रहवेकी आदत है. तब दयानन्द बोले के ऐसे ही मेरे आखे शरीरकु उघाड़े रहवेकी आदत है. तो देखो बात आदतकी है.

मन विषयको आनन्द नहीं लेवे है. मन इन्द्रियन्के द्वारा पैदा होती भई अनुभूतीन्को आनन्द ले है. मनकु निरन्तर जा अनुभूतिकी तुम आदत डाल दोगे वाको आनन्द मन लेवे लग जायगो. अपनने अपनी इन्द्रियन्कु भगवदानन्दकी अनुभूतिकी आदत डालदी तो मन वहां आनन्द लेवे लग जायगो. मन जब वो आनन्द लेवे लग जायगो मतलब प्रलम्बासुरको वध हो गयो. मन प्रलम्ब है. 'प्रलम्ब' मतलब जाको खाता लम्बो चले, ये सबसु पीछे वशमें आयेगो.

अपन ये सोचें के मनकु पहले वशमें करलें. पर मन वशमें आवे नहीं है. क्यों नहीं आवे? बात समझो के जो आदमी सिगरेट्र फूंकतो होवे वाकु जब सिगरेट्र फूंकवे नहीं मिले तब वाकु सुस्ती आयगी, तकलीफ होयगी. पर आप सोचो के जब वाकु सिगरेट्र फूंकवेकी आदत नहीं पड़ी हती क्या तब वाकु तकलीफ होती हती? सुस्ती आती हती ? नहीं. क्यों? तब मन वहां लम्बो भयो नहीं हतो. पर जबसुं

वाने फूंकनो शुरु कियो तबसुं धीरे-धीरे फूंक-फूंक सीगरेट वाको मन वहां लम्बो हो गयो. करके अब वो सीगरेट नहीं फूंके तो वाकु तकलीफ होवे है. तो देखो मन प्रलम्ब है. वाको काम ही है के तुम इन्द्रियन्सु जो अनुभूतिमें वाकु फंसादो वामें वो लंबो होके फंस जाय.

स्वरूपविस्मृति :

प्रलम्बासुरको वध तब ही हो सके के जब इन्द्रियाभिमान शिथिल हो जाय, देहाध्यास शिथिल हो जाय. और जब प्रलम्बासुरको वध हो गयो वाके बाद पञ्चपर्वा अविद्यामेंसु अन्तिम पर्व 'स्वरूपविस्मृति'रूप अज्ञानको क्रम आयगो. ये अज्ञान कौनसो है? अपनने परमात्माकु मानवेके स्थानपे अपने आपकु कुछ मान रख्यो है ये अपनो अज्ञान है. ये बात बहुत छोटीसी है. पहले भी ये बात मैने आपकु समझायी हती. जैसे अभी यहां कोई आपसुं पूछे के आप कहां रहो हो आप क्या उत्तर दोगे? आप अपने घरको नाम दोगे. क्या आप यों कहोगे के किशनगढमें रहु हूं? नहीं. क्या आप यों कहोगे के राजस्थानमें रहु हूं? नहीं. पर जब अपन राजस्थानके बहार जायें और वहां कोई पूछे के कहां रहो हो? तो अपन कहेंगे के राजस्थानमें रहें हैं. ऐसे ही किशनगढमें कोई पूछे के कहां रहो हो? तो अपन यों नहीं कहेंगे के किशनगढमें रहें हैं. अपन कहेंगे? नयाशहरमें रहे हैं या पुराने शहरमें रहे हैं. किशनगढके ही नया शहरेमें कोई पूछे के कहां रहो हो? तो कोई यों नहीं कहेगो के नया शहरमें रहे हैं. क्या कहेगो? फलाने महोल्लामें रहे हैं. तो देखो हर बखत अपन अपनी आदतके अनुसार कछु छोटो ही पकड़नो चाहे हैं, बड़ो नहीं पकड़नो चाहे हैं. ऐसे ही अपन अपनी आत्माकु ही पकड़नो चाहे हैं, परमात्माकु पकड़नो नहीं चाहे हैं. अपनकु छोटो सोचवेकी आदत पड़ गई है. दृष्टि-क्षितिज अपनी छोटी हो गई है करके दिखाई भी अपनकु छोटो ही देवे है. जब भी सोचें तब छोटो ही समझमें आवे है. बड़ी बात अपनकु समझमें नहीं आवे है. और बड़ी बात यदि अपन केहें तो लोग अपनकु पागल समझें. क्योंके जब सारो गाम पागल है तो एक आदमीको समझदार होनो पागलपन है. पागलखानामें अपन चलें जाय तो सब अपनकु पागल समझेंगे. क्योंके वहां पागलपन ही विवेक है. और जो विवेक है वो पागलपन है. ऐसे ही या दुनियामें हर तरीकेको छोटोपन ही विवेक है और विशाल अनुभूति पागलपन है. तो समझवेकी बात ये है के जब अपने भीतर रह्यो भयो प्रलम्बासुर मरे तब अपनकु विशाल अनुभूति होनी शुरू हो पायगी के अपनी हकीकत आत्मा नहीं है पर अपनी हकीकत परमात्मा है.

वेणुवादन :

अपनो अज्ञान जब दूर होयगो तब लीलावर्णन करते भये भागवतमें आवे है के भगवानने वेणुवादन करके गोपीकान्को मन अपनेमें सम्पूर्णतया आत्मसात कर लियो. भगवानकी बंसी तब बजनी शुरू

भयी. भगवानकी बंसी तब सुनाई देनी शुरू भई.

एक बात ध्यानसुं समझो के भगवान् तो बंसी वृन्दावनमें बजा रहे हते और गोपिकाएं भगवान्की बंसी व्रजमें सुन रही हतीं. तो भगवान् क्या टेलिफोनमें बंसी बजा रहे हते के टी.वी.में बजा रहे हते? वहां न तो लाउडस्पीकर हतो न टेलिविझन हतो न टेलीफोन हतो. वहां जो हतो वो भगवान् जो कछु वृन्दावनमें कर रहे हते वाकु देखवेको भाव हृदयमें पनप गयो हतो. दिल वा बातकु कहवे लग गयो हतो. याकु अंग्रजीमें इंट्यूशन् (अन्तःस्फुरणा) कहे हैं. कई बार अपने साथ ऐसो होवे है के अपनो कोई मित्र आवेवालो होवे वाकी जानकारी अपनकु नहीं होवे फिर भी अपनो दिल पहलेसु वाकी सूचना दे देवे के आज फलानो अपने यहां आवेवालो है. कोई जावेवालो होवे तब अपनो दिल पहलेसुं घबड़ा जातो होवे है, अन्तःस्फुरणा हो जाती होवे है के कोई जावेवालो है. ऐसे उन व्रजभक्तन्को अन्तःकरण इतनो भगवदात्मक हो गयो हतो के वृन्दावनमें बजती भयी बंसी उनकु व्रजमें सुनाई देवे लग गई. या ही तरहसुं जब प्रभु अपनकु बुलावेकेलिये बंसी बजायेंगे तो वो बंसी भी अपनकु अपने अन्तःकरणमें सुनाई देवे लग जायगी. रवीन्द्रनाथ टेगोरने बहुत सुन्दर एक कविता लिखी है. वो कहे हैं:

' ' मोकु अचानक रातकु बंसीके सुर सुनाई दिये. और उन बंसीके सुरन्की दिशामें आगे बढते-बढते मैं तेरे द्वार तक पहुंच गयो. मैने देख्यो नहीं के मैं रस्तासु गुज़र्यो के पगदण्डीसु गुज़र्यो. मैने देख्यो नहीं के मैं रस्तासु गुज़र्यो के ऊबड़-खाबड़ जमीनसु मैं तेरे दरवाजा तक पहुंच्यो. ओर जब तेरे दरवाजा तक पहुंच्यो तब बड़े-बड़े सिद्ध-मुनि वहां बैठे भये हते. उनने मोसुं पूछी के तुम कहांसु आये हो? तब मैने कही के मोकु पता भी नहीं चल्यो के मैं कहांसुं आयो हूं. मैं तो बंसीकी धुन सुनते-सुनते आ गयो. उनने कही के हम या मार्गसुं आये हैं पर अभी तक हमारेलिये दरवाजा नहीं खुल्यो है. तुमकु तो पता भी नहीं है के तुम कहांसु आये हो तो तुम्हारेलिये दरवाजा कहांसु खुलेगो. तब तेने अपनो दरवाजा खोल्यो ओर मोकु खींचके अन्दर ले लियो. और ये लोग सब हल्ला मचाते रह गये के प्रभु ये कोई मार्गसुं नहीं आयो है''.

व्रजकी कोई गोपी कोई शास्त्रीय मार्गसुं नहीं गई हती, अपने आप पहुंच गई हती. कोई टोर्च् लेके नहीं गई हती. केवल बंसी उनकु सुनाई दे रही हती, बंसी उनकु अपनी तरफ खींच रही हती. ' ' सर्वप्रवाह सर्वत्र स्वानुकुल्येन दर्शति, वेणुगीतप्रवाहस्तु प्रातिकूल्येन कर्षति''. हर प्रवाह जहांसु बहे है ओर जा दिशामें बहे है वा तरफ बहावे है. ओर वेणुगीतको प्रवाह ऐसो है के जो वामें पड़े है वाकु जहांसु वो बहे है वहां खींचके ले जाय है. तो भगवानको जीवकु अपने तरफ बुलावेको वेणुगीतको जो प्रवाह है वो अन्तःकरणमें तब स्फुरित होयगो और अपन तब प्रभुकी तरफ खिंचके पहुंच जायेंगे. वामें

मार्ग, साधना, प्रकाश, अप्रकाश के सारे क्राईटेरिया समाप्त हो जायेंगे.

अन्तमें, ठाकुरजी वेणुगीतके प्रवाहसुं अपनकु अपने तरफ खींचते रहे ऐसी आप सबन्के प्रति शुभकामना. और श्रीमहाप्रभुजीकी अपनेपे ऐसी कृपा बरसे के सेवाको जो भाव श्रीमहाप्रभुजी अपनकु समझानो चाह रहे हैं वा भावके प्रति प्रभुकी ऐसी बन्सी बाजे के अपन वा भावमें खिंचके श्रीमहाप्रभुजीकु जैसी भगवत्सेवा पसंद आवे वैसी सेवा करते होवें. गामकु पसंद आवे वैसी सेवा निभी तो क्या और नहीं निभी तो क्या? गामसुं अपनकु क्या लेना-देना? अपनो काम तो श्रीमहाप्रभुजीसुं है. श्रीमहाप्रभुजीकु जैसी सेवा पसंद आवे वैसी सेवा अपन करें. यदि वैसी सेवा अपन कर पावें तो अपनकु लगेगो के अपन व्रजकु जी रहे हैं, व्रजलीलाकु जी रहे हैं.

।। परिशिष्ट ।।

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा।
षड्भिर् विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम।।

चतुर्भिः विराजते (जन्मप्रकरण) :

दशमस्कन्धके प्रथम चार अध्याय जन्मप्रकरण कहलाते हैं. इन अध्यायोंमें भगवान् भूतलपर क्यों प्रकट हुवे, भूतलपर प्रकट होनेकेलिये भगवानने क्या-क्या किया इत्यादि विषयोंका निरूपण किया गया है.

जन्मप्रकरणके चार अध्यायोंके बाद दूसरा प्रकरण तामसप्रकरण आरम्भ होता है.

चतुर्भिः विराजते (तामसप्रकरण) :

पहले सात अध्यायोमें भगवान्को जाननेके जो सारे प्रमाण हैं वो भगवानने प्रकट भी दीखा दिये हैं के भई इन-इन प्रमाणोंके रहते मैं भगवान हूं. दूसरी ओर व्रजभक्त कह रहे हैं के वो प्रमाण नहीं है, हमारे दिलमें जो जच गया है के तुम हमारे बालक हो, तुम हमारे दोस्त हो, तुम हमारे प्रियतम हो वो

बात प्रमाण है. ये तामस प्रमाण है. क्योंके भगवान् दिखा रहे हैं कि देखलो, मेरे मुंहमें ये सारा ब्रह्माण्ड समाया हुवा है, प्रत्यक्ष दिखा दिया. व्रजभक्त कहेतें है कि प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है. यशोदाजी क्या कहती हैं कि इसके मुंहमें जो ब्रह्माण्ड प्रत्यक्ष दीख रहा है वो प्रमाण नहीं है, वह तो कुछ भूत-बाधा लग रही है. तब बोले प्रमाण क्या है? प्रमाण यह है कि मेरा दिल कहता है कि ये मेरा बच्चा है. ये प्रमाण है. इस प्रमाणको श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं कि यह तामस प्रमाण है. क्योंकि भगवान्की हकीकतको स्वीकारे बिना अपने भावको प्रधानता देना वह भगवान्को जाननेमें तामस प्रमाण है. उस प्रमाणसे भगवान्का जो स्वरूप प्रकट होगा उसको 'प्रमेय' कहते हैं. तब तो फिर वह प्रमेय भी तामस ही प्रमेय होगा. वहां फिर वह प्रमेय तो प्रकट नहीं होगा कि जो भगवान्का अपना स्वतन्त्र-निरपेक्ष स्वरूप है. वहां तो वह ही प्रमेय प्रकट होगा जिस तरहसे भक्त अपने प्रमाणके हिसाबसे भगवान्को जानना चाहता है.

जैसे एक बात समझो, आपने हरे गोगल्सका चश्मा पहन रखा है. अब आपको हरी चीज़ भी हरी दिखलाई देगी और सफेद भी हरी दिखलाई देगी. अब दुनिया आपसे कह रही है कि भई ये हरि नहीं सफेद है और आप कह रहे हो कि मुझको आंखसे रहा दिखलाई दे रहा है तो मैं क्या करुं? अब आपसे ये कौन कहे कि आप हरा चश्मा उतार दो. ऐसा जब भगवान्ने भक्तोंको नहीं कहा कि तुम अपने भक्तिके चश्मे उतार दो तो दूसरे किसकी ताकत है कि हमको यह समझाये कि तुम अपने भक्तिके चश्मे उतारके भगवान्को देखो. जो भक्तिका चश्मा हमने पहना है उस चश्मेसे जैसा भगवान् हमको दीखता है वैसा ही तो वर्णन हम करेंगे न. तुमको दीखता होगा कि ये भगवान् विश्वव्यापी है, तुमको दीखता होगा कि इसके मुंहमें ब्रह्माण्ड है, हमको दीखता है कि इसके अंदर कोई भूत बाधा है. हमको हमारे भक्तिके चश्मासे ऐसा ही दीख रहा है, हम वही बात मानेंगे. इसका नाम तामसप्रमेय है.

जब इस तरहका तामसप्रमाण और तामसप्रमेय स्थिर हो गया तब उस प्रमेयको पानेको जो साधन होंगे वह भी तो तामस ही होंगे. भक्त यों कहेंगे कि जिस तरहसे हम तुमको पाना चाहते हैं तुमको उसी तरहसे पायेंगे. तुम जिस तरहसे हमको मिलना चाहते हो उस तरहसे हम तुमसे नहीं मिलेंगे, जाओ.

औरंगझेबके जमानेमें सरमद हुवा. उसने यह बात बहुत अच्छे ढंगसे कही है वह कहता है :

''अगर्-उ-वफ़ास्त खुदमिआयद्,
वर आमदनस् रवास्त खुदमिआयद् बेहूदा चरा दरपए
उमिगर्दि अगर्-उ-खुदास्त खुदमिआयद्''.

‘खुदा’का मतलब होता है ‘खुद आ’. खुद जो आता हो उसका नाम ‘खुदा’. तो वह कहता है कि आना किसका अच्छा है, उसका कि मेरा? भई आना तो उसका अच्छा है क्योंकि मैं वहां जाउंगा तो यहां सब लोग रोयेंगे कि मरगया, मरगया, मरगया करके. वो यहां आयगा तो कोई रोयेगा? उसको खुद ही आना चाहिये. क्योंकि मैं वहां जाउंगा तो सब यहां रोयेंगे. इससे वह निष्कर्ष निकालता है कि ‘‘बेहुदा चरा दरपए उमिगर्दि’’ तो जब वो खुद आनेवाला है, उसका खुद आना अच्छी बात है तो मैं क्यों दरबदर भटकुं? यदि वह खुदा है तो उसको मेरे पास आना चाहिये, मैं उसको खोजने क्यों जाउं? देखो ये तामसभाव है. ये सात्त्विक भाव नहीं है. आप यह नहीं कह सकते है कि सरमदके दिलमें भगवान्के प्रति सक्ेह नहीं है. सक्ेह तो पूरा भरा हुआ है पर उस सक्ेहका जो रंग है वो तामस है. इसलिये वह भगवान्केलिये भी यही कहता है के यदि वह खुदा है तो खुद आयेगा में क्यों भटकुं? बेहूदे ढंगसुं इधर-उधर मन्दिरमें मस्जिदमें क्यों जाउं? अपने यहां जो कहा है कि ‘‘जोपें अपने करम कर उतरों हों पार तो हों ही कर्तार, कर्तार तुम काहेके’’. ये तामस भाव है. सारे व्रजभक्त साधन भी इसी तरहका करना चाहतें है भगवान्को पानेकेलिये. वे कहते हैं कि आ जाओ तुम हमारे पास जब हम बुला रहें है तो. हम क्यों तुम्हारे पास क्यों आयें? तुम हमारे पास क्यों नहीं आते हो? चक्कर क्या है, तुमको तकलीफ क्या है? यह बताओ. अपने यहां ‘खुदा’ शब्द नहीं है मगर भाव तो अपना वही है कि तुम खुदा हो तो खुद आओ, हम नहीं आयेंगे तुम्हारे पास. ये भाव तामस साधनका भाव है. इस तामसभावके साधनके अधीन जब परमात्मा प्रकट हो जाता है तो उसे तामसफल कह दिया जाता है. इसलिये कहा जाता है कि उनको फल भी तामस ही उनको मिला. वो भगवान्के पास नहीं गये, भगवान् उनके पास आ गये.

अंग्रेजीमे बहुत अच्छी कहावत है ‘‘मुहम्मद केन् नोट् गो टु माउन्टन्, माउन्टन् विल् कम् टु मुहम्मद’’. मुहम्मद अगर पहाड़के पास नहीं जा सकता है तो पहाड़को मुहम्मदके पास आना चहिये. ये तामसफल वाली बात है कि हम वहां नहीं जा सकते, भई हम कहांसे जायेंगे? क्यों जायें? वैकुण्ठाधिपतिको हमारे यहां आना चहिये. इसको तामसफल कहते हैं.

तो इस तरह भागवतके दशमस्कन्धमें जन्मप्रकरणके प्रथम १ से ४ अध्यायोंके बाद ५ से ११ ये सात अध्याय तामस प्रमाणप्रकरणके हैं. उसके बाद तीन प्रक्षिप्त अध्यायोंको छोड़कर १५ से २१ ये सात अध्याय तामस प्रमेय प्रकरणके हैं. उसके बाद अध्याय २२ से २८ ये सात अध्याय तामस साधनप्रकरणके हैं. और उसके बाद अध्याय १९ से ३५ ये सात अध्याय तामस फलप्रकरण के हैं.

चतुर्भि: विराजते (राजसप्रकरण) :

इसके बाद दूसरा राजस प्रकरण शुरु होता है. इसमें भी पूर्ववत् सात-सात अध्यायके प्रमाण प्रमेय साधन और फल इस तरहसे चार प्रकरण हैं. यहां व्रजलीला समाप्त हुई और मथुरा लीला शुरू हुई है. मथुरा लीलासे सम्बन्धित भक्तोंका राजस भाव होनेसे उनका प्रमाण भी राजस है, उनका प्रमेय भी राजस है, उनके साधन भी राजस हैं, और उनको जो फल मिला वह भी राजस नेचर् का ही मिला. तात्पर्य यह है कि राजसभावमें तामसवाली जडता नहीं है कि जो हमने मानलिया सो ही ठीक है. इसलिये वो राजस प्रकरण है.

त्रिभि: विराजते (सात्त्विकप्रकरण) :

उसके बाद 'त्रिभि:' आता है. यहांसे द्वाराकालीला सम्बन्धि प्रकरण शरू होता है. इसको श्रीमहाप्रभुजी सात्त्विक प्रकरण कहते हैं. क्योंके उस समय तक सब लोगोंने श्रीकृष्णको कान पकड़के भगवान् मान लीया था. और स्वयं भगवानने भी जब तक मथुरामें थे तब तक अपने दो श्रीहस्त ही प्रकट रखे थे. और जब कालयवन पीछे पड़ गया और भगवानने मथुराको छोड़ा तब भगवान्ने अपने चार श्रीहस्त प्रकट कर लिये थे.

भगवान् जब प्रकट हुवे थे तब चार श्रीहस्त सहित प्रकट हुवे थे. परन्तु गोकुल जाना था इसलिये आपने दो ही श्रीहस्त प्रकट रखे थे. और जब मथुरा त्यागके द्वारकाकी तरफ भगे तब फिरसे चार श्रीहस्त प्रकट करलिये. भगवान्के चार श्रीहस्त प्रकट हो गये उसके कारण अपवादरूपसे शिशुपाल यह कहता रहा कि पहले तो तुम्हारे दो ही हाथ थे, अब ये दूसरे दो हाथ कहांसे आ गये इसलिये वह कहता था कि तुमने जूठे हाथ लगाये होंगे. इसी तरह पौण्ड्रक वासुदेव भी कहता था. उसके दो हाथ ही थे. पर उसने दो हाथ लकड़ेके लगा लिये और कहने लगा कि मैं भी वासुदेव हूं.

इन आपवादिक बातोंको छोड़कर प्राय: सभी लोगोंने कृष्णको भगवान्के रूपमें स्वीकार लीया था. तो जब श्रीकृष्णको भगवान्के रूपमें स्वीकार लीया फिर तो प्रमाणकी कोई आवश्यकता नहीं रहे गई न इसलिये सात्त्विक प्रकरणमेंसे सात्त्विक प्रमाणका एक प्रकरण कम हो गया. इसलिये श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं कि सात अध्याय वहां कम लीखे गये हैं. इसलिये इक्कीस अध्यायोंका सात्त्विक प्रकरण है.

षड्भि: विराजते (गुणप्रकरण) :

सात्त्विक प्रकरण जहां पूर्ण हुवा है उसके बादके छे अध्यायोंमें भगवान्के ऐश्वर्य वीर्य यश श्री

ज्ञान और वैराग्य गुणोंका वर्णन है. वो सारे अध्याय निर्गुण अध्याय हैं. निर्गुण अध्याय यानी उन अध्यायोंमें जिन भक्तोंका भाव वर्णित है वो सात्त्विकसे भी उच्चकोटिका निर्गुण भाव वर्णित है. वो निर्गुण भाव क्या है वो अपन आगे चर्चा करेंगे.

मङ्गलाचरणके श्लोकका भावार्थ इस तरह है : चार प्रकारसे, चार प्रकारसे, चार प्रकारसे, तीन प्रकारसे, छह प्रकारसे ह्नऐसे पांच तरहसे जो मेरे हृदयमें बिराजते हैं उन कृष्णको मेरे नमस्कार

एक बात ध्यानसुं देखो, कितनी बेवकूफीकी बात कुछ लोग अपने विषयमें कहे हैं के अपने यहां केवल व्रजके ही ठाकुरकु माने हैं. श्रीमहाप्रभुजी स्पष्ट कह रहे हैं के ''पञ्चधा हृदये मम'' कृष्ण अपनी समग्रतासु मेरे हृदयमें पांच तरहसुं बिराजे है. तो द्वारका और गीता की तो बात जाने दो वाके आगेको भी कृष्ण अपने हृदयमें बिराजे है. अपनने कृष्णकु पूरो लीयो है, अपनने कृष्णकु बांटके नहीं लीयो है. कोई नहीं समझें तो वाको अपन क्या करें? अपन कृष्णकु पूरे पूरो हृदयमें पधरा रहे हैं. सारो पुष्टिमार्ग या मङ्गलाचरणको पाठ करे है के नहीं जा के पूछलो. सारो पुष्टिमार्ग मङ्गलाचरणको पाठ करे है :

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा।
षड्भिर् विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम।।

पर कोई समझे नहीं तो वाको तो क्या उपाय उपनिषद्‌ने बहुत अच्छी बात कही है के खेतके नीचे सोना गड्यो भयो है, मनन सोना गड्यो भयो है. किसान बिचारो खेत जोतके पसीना बहा रह्यो है. क्योंके वाकु पता ही नहीं है के खेतके नीचे सोना है. अपने पुष्टिमार्गकी भी ऐसी ही कथा है. अपने खेतके नीचे भी सोना गड्यो भयो है और अपन पसीना बहा-बहाके दुःख पा रहे हैं के या साल पाला पड़ गयो, या साल फसल जल गई, या साल जानवर खा गये. अपन दु:खीके दु:खी ही रहे और सोना तो नीचे खेतमें गड्यो ही रह गयो. अपनो सारो सोना ऐसेही गड्यो भयो है और अपनकु पता है नहीं के वो सोना है कहां? कोईने कह दी तो अपन भी सब ऐसे ही सोचवे लगे के हम तो बस व्रजके ही कृष्णकु माने हैं. अरे भाई श्रीमहाप्रभुजी क्या कह रहे हैं ''षड्भिर्विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम'' पांच तरहसु मेरे हृदयमें कृष्ण बिराजे है तो पुष्टिमार्गीन्कु ये फितुर कहांसु सूझी के व्रजको ही कृष्ण हमारो है, ओर कृष्णसुं (कृष्णके अन्य पक्षसुं) हमारो कछु नाता-रिश्ता नहीं है. आई न समझमें बात? कितनी बेवकूफीकी बात है.

अब सेवाकी बात लो. सेवामें अपने यहां व्रजको भाव यालिये स्वीकार्यो गयो है क्योंके वाकु 'खुदा' बनानो है. हमकु वाकी सेवा वाके मन्दिरमें जाके नहीं करनी है, हमारे घरमें वाकु पधराके सेवा करनी है. नहीं तो तो वाकु सेवाकी जरूरत ही क्या पड़ेगी? हमकु वाकु अपने घरमें पधराके सेवा करनी है, वाके घरमें जाके हमकु सेवा नहीं करनी है, हमारे घरमें वाकु पधराके वाकी सेवा करनी है. ''नन्दनन्दन कर घरको ठाकुर, आप होय रहे चेरो, यामें कहा घटेगो तेरो'' सूरदासजी गावे हैं न तो ''नन्दनन्दन कर घरको ठाकुर'' अपने घरको ठाकुर नन्दनन्दनकु बना और फिर सेवा कर. अब ये बात तो व्रजमें ही लागु पड़ेगी न करके अपनने व्रजको भाव स्वीकार्यो है, कृष्णकु कभी भी अपनने व्रजके भावमें सीमित नहीं रख्यो है. कृष्ण तो व्रज क्या, मथुरा क्या, द्वारका क्या, वो सब क्षुद्र कथा है, कृष्णकु तो अपनने स्वीकार्यो है वाकी समग्रतामें. माने वैकुण्ठसुं लेके और गोकुल तक अपनकु कृष्ण स्वीकार्य है. काराग्रहमें जो कृष्ण जन्म्यो है वो भी अपनकु स्वीकार्य है.

आज तो कबाड़ा हो गयो अपने पुष्टिमार्गमें पर एक बात आपकु बताउं. वा हकीकत आपकु समझनी चहिये के ठाकुरजीकु पुष्ट करवेके जो मन्त्र हैं वा मन्त्रमें स्पष्टतया ये बात लीखी गयी है के कारागृहमें जब भगवान जन्मे हैं वा बखतके जो भागवतके श्लोक हैं उन श्लोकनूकु बोलके ठाकुरजीकु पुष्ट करनो : ''तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदायुदायुधं, श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सांद्रपयोदसौभगम् ...'' तो वो गोकुलको कृष्ण कहां भये? वो तो मथुराको कृष्ण भयो बात समझमें आयी न मेरी. तो ऐसो भेद अपनने कब विचार्यो हतो? अपनने कभी नहीं विचार्यो हतो. लोगनने ग्रन्थ देखे नहीं और जो फितुर आ गई वो मानवे लग गये. वाको तो क्या उपाय. और आज भी जहां भी प्राचीन सेवाको प्रकार है वहां जन्माष्टमीके दिन जन्मके समयके पहले पट बंध होवे. पीछे ''अथ सर्वगुणोपेत: कालः परम शोभन:'' श्लोक बोले जाय हैं. और जब जन्मको समय होवे तब पट खोल्यो जाये बिलकुल वाही तरहसुं के जैसे कंसके काराग्रहके पट खुले और कृष्ण प्रकट्यो. सेवाको प्रकार अपनो येही है. प्रत्येक जन्माष्टमीकु अपन काराग्रहको पट खोले हैं और कृष्णकु प्रकट करे हैं. यदि अपन व्रजके ही कृष्णकु मानते होंय और मथुराके और द्वारकाके कृष्णकु नहीं मानते होंय तो उन श्लोकनूकु बोलवेकी जरूरत क्या है? फिर तो केवल नन्दोत्सवही करनो चहिये ''व्रज भयो महरके पूत जब यह बात सूनी''. पर एक बात फिरसु ध्यानसुं समझो के ये श्लोक बोल लिये जांये वाके बाद अपन गावे हैं ''व्रज भयो महरके पूत जब यह बात सूनी, सुनि आनन्दे सब लोग...''. याके पीछे अपनो कछु मतलब है, या प्रणालीमें अपनो कोई भाव है. या प्रणालीके भावके अन्तर्गत अपनकु ये समझायो गयो कि ''पञ्चधा हृदये मम'' पांचो प्रकारसु कृष्णकु अपने भीतर पधरावो. याको शुद्ध-शुद्ध अर्थ ये है के कृष्णकु वाकी

समग्रतासु अपने भीतर पधरावो. कृष्णकु वाकी समग्रतासुं भीतर पधरावो वाको शुद्ध-शुद्ध मतलब ये है के कृष्णकु निर्गुणभाव रखके अपने भीतर पधरावो. निर्गुणभाव है तो कृष्ण समग्रतासुं स्वीकार्य होयगो. परन्तु भाव यदि सगुण हो गयो तो या तो अपन तामसभाव पकड़ेंगे, या सात्त्विकभाव पकड़ेंगे, या राजसभाव पकड़ेंगे. यदि सात्त्विक भाव पकड़ेंगे तो कृष्णकु अपन पलना कैसे झुलायेंगे? सात्त्विक भावसुं कृष्णकु पलना कैसे झुलानो? कृष्णकी नज़र कैसे उतारनी जो अपन राई-नोन करके उतारे हैं? सात्त्विक भावमें तो सबकी नजर वो उतारेगो, अपन कृष्णकी क्या नजर उतारेंगे पूजाकी आरती तो उतार सकेंगे क्योंके भगवान है. नज़र कैसे उतारेंगे राई-नोन करके. मुठिया जो वारे जांय हैं हर उत्सवपे वो क्यों वारे जाय हैं? वा लिये के कोई टोटका-टामन हमारे कृष्णपे चल न जांये. पर यार कृष्णपे टोटका-टामन चलेंगे कौनके? कृष्णपे कौनके चल सकें? पर वो टोटका-टामन नहीं चले करके मूठिया उतार-उतारके उत्सवके दिन फेंके जाये. गुजरातीमें याको नाम 'डोशीशास्त्र' कहवावे, बुढियापुराण. ये बुढियापुराण अपन ठाकुरजीकी सेवामें क्यों लागु करे हैं, यदि वाकु भगवान् मानते होय तो. और यदि भगवान् नहीं मानते होंय और बच्चा ही मानते होंय तो दण्डवत् क्यों करें? बच्चाकु दण्डवत् करवेकी क्या जरूरत है? बच्चाके चरणमें तुलसी समर्पवेकी क्या जरूरत है? बच्चाकी आरतीमे घंटा बजावेकी क्या जरूरत है? डर जायगो बच्चा. पर समझो के श्रीमहाप्रभुजीको भाव निर्गुण है या बातकु ध्यानसु समझो. या लिये अपन सारी बातन्को मज़ा कृष्णके साथ ले सके हैं. तामसभावको भी मजा लेंगे तो कृष्णके साथ, राजस भावको भी मजा लेंगे तो कृष्णके साथ, सात्त्विक भावको भी मजा लेंगे तो कृष्णके साथ और निर्गुणभावको भी मजा लेंगे तो कृष्णके साथ. जो मजा लेंगे वो कृष्णके साथ लेंगे. करके ''पञ्चधा हृदये मम'' श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं.

आपने बड़ो अच्छो प्रश्न कियो. येही बात है जो अपनकु मुख्यतया समझनी चहिये. ये समझे तो अपन कृष्णकु समझे और ये बात यदि नहीं समझे तो कृष्ण अपनकु समझमें नहीं आयगो. कृष्ण अपनकु आधो-अधूरो समझमें आयगो. कभी कृष्णको हाथ समझमें आयगो तो चरण समझमें नहीं आयगो, चरण समझमें आयगो तो मस्तक समझमें नहीं आयगो, ऐसे आधो-अधूरो कृष्ण समझमें आयगो. समग्र कृष्ण समझमें नहीं आयगो. अपनकु समग्र कृष्णकु कभी भूलनो नहीं चहिये करके श्रीमहाप्रभुजीने ये मङ्गलाचरण कियो. या लिये या मङ्गलाचरणकु भी अपनकु कभी भूलनो नहीं चहिये. क्योंके एक बात ध्यानसु समझो के श्रीमहाप्रभुजीने ये मङ्गलाचरण दशमस्कन्धके प्रारम्भमें कियो है, पुष्टिमार्गके प्रारम्भमें नहीं कियो है. परन्तु श्रीमहाप्रभुजीके बाद श्रीगुंसाईजीके कालसु सारे पुष्टिमार्गमें ये श्लोक मङ्गलाचरणके रूपमें रूढ हो गयो है. क्यों रूढ हो गयो? वाको मूल कारण ये है के या श्लोककु आप दशमस्कन्धके प्रारम्भको ही केवल मत समझ लिजीयो, ये तो पुष्टिमार्गके प्रारम्भकी कथा है. पुष्टिमार्ग यदि प्रारम्भ

होयगो तो याही तरहसुं होयगो :

नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धिशयिनम्
लक्ष्मीसहस्रलीलाभि: सेव्यमानं कलानिधिम्
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा
षड्भिर्विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम

या तरहसु पांच तरहसु कृष्ण आपके हृदयमे श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी, गोपीनाथजी और जाकु भी अपन गुरु मानते होंय वाकी कृपासु अपने हृदयमें बिराज गयो तो पुष्टिमार्गको मङ्गलाचरण हो गयो. पुष्टिमार्ग अब शुरू हो सके है. और यदि नहीं बिराज्यो तो आप चाहे सेवा करो, चाहे कथा करो, चाहे शीर्षासन करो, चाहे ऊर्ध्वासन करो पर पुष्टिमार्ग शरू नहीं होयगो. क्योंके पुष्टिमार्गको मङ्गलाचरण तो भयो नहीं है पुष्टिमार्ग कहांसु शुरू होयेगो. पुष्टिमार्गके मङ्गलाचरणकी शर्त ये हे के पञ्चधा हृदयमें बिराजनो चाहीये. श्रीमहाप्रभुजी श्रीगोपीनाथजी श्रीगुसांईजी अपने हृदयमें बिराजने चहिये. और लक्ष्मीसहस्रलीलाभि: सेव्यमान् कलानिधि अपने हृदयमें बिराजनो चहिये. पञ्चधा अपने हृदयमें बिराजनो चहिये, एकधा नहीं बिराजनो चहिये तो पुष्टिमार्गको मङ्गलाचरण होवे. करके जैसे सारे भारतमें ''जन गण मन अधिनायक जय है भारत भाग्य विधाता'' गवे है ऐसे सारे पुष्टिमार्गमें ''चिन्तासन्तानहन्तारो ... पञ्चधाहृदये मम'' मङ्गलाचरण गवे है. याको कोई कारण है. वो कारण कितनो गम्भीर है वो अपन सब समझ सके हैं.